रामायण महाभारत

काल-मीमांसा

पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज

सम्पादक तथा प्रकाशक

श्री सन्त शरण वेदान्ती

धर्मसंघ, प्रकाशन

दुर्गाकुण्ड, वाराणसी

सहायतार्थ ७रु० २५ पै०

रामायण महाभारत
काल-मीमांसा

कुछ पश्चात्त्य विद्वान् और उनके अनुयायी कतिपय भारतीय विद्वान् भी महाभारत के पात्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि को ऐतिहासिक पुरुष न मानकर काल्पनिक मानते हैं एवं महाभारत के युद्ध को प्रत्येक पुरुष के मन में उठनेवाली दैवी-आसुरी वृत्तियों का युद्ध अथवा धर्म-अधर्म का युद्ध मानते हैं। इससे वे यह कहना चाहते हैं कि महाभारत कोई इतिहास नहीं है। किन्तु ऐसा मानने में उन लोगों के पास कोई प्रमाण नहीं है। हम आगे उन्हीं प्रमाणों का सङ्कलन करने जा रहे हैं जो उनकी ऐतिहासिकता के पोषक हैं। प्रतिदिन प्रातः स्मरण में उन लोगों का स्मरण ही यह बतलाता है कि वे ऐतिहासिक हैं।

(१) धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन।
पापं प्रणश्यति वृकोदरकीर्तनेन॥
शत्रुर्विनश्यति धनञ्जयकीर्तनेन।
माद्रीसुतौ कथयतां न भवन्ति रोगाः॥'

यदि ये ऐतिहासिक न होते तो इनके पश्चाद्भावी लेखक इनका स्मरण नहीं करते। जिन लेखकों ने स्मरण किया है उनकी तालिका नीचे दी जा रही है—महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ से ही माघ कवि ने अपना शिशुपालवध काव्य लिखा है।

संवत् ९७७ के इस ग्रन्थ के टीकाकार वल्लभदेव महाभारत ग्रन्थ को सवा लाख श्लोकों का मानते हैं। वे शिशुपालवध के २।३८ की टीका में लिखते हैं 'सपादलक्षं श्री महाभारतम्।'

संवत् ६५७ के राजशेखर भी अपनी काव्यमीमांसा (पृष्ठ ७) में महाभारत को शतसाहस्रीसंहिता कहते हैं।

विक्रम की आठवीं शताब्दी के आचार्य आनन्दवर्धन अपने ध्वन्यालोक में महाभारत के शान्तिपर्व के १५२ अध्याय के गृध्रगोमायुसंवाद का उल्लेख करते हैं। वे महाभारत के आदि पर्व के पहले अध्याय (अनुक्रमणी) को एवं हरिवंश को भी महाभारत का अंश मानते हैं—'ननु महाभारते यावानपि विवक्षाविषयः सोऽनुक्रमण्यां सर्व एवानुक्रान्तः······महाभारतावसाने हरिवंशवर्णनेन समाप्तिं विदधता तेनैव कविवेधसा कृष्णद्वैपायनेन सम्यक् स्फुटीकृतः' (ध्वन्यालोक ४ उद्योत कारिका ५)।

संवत् ६८७ के वल्लभी निवासी ऋग्वेदभाष्यकार आचार्य स्कन्दस्वामी अपने भाष्य में महाभारत के अनेक आख्यानों का निर्देश करते हैं 'भारते तु ऋषयः शापात् सरस्वतीं मोचयामासुरित्याख्यानम्' (ऋ० सं० १।११२।६) यह आख्यान शल्य पर्व के ४४ वें अध्याय में है।

सप्तम शताब्दी में विद्यमान आचार्य दण्डी कवि अपनी अवन्तिसुन्दरी में महाभारत एवं उसके रचयिता महर्षि वेदव्यास का स्मरण करते हैं—

'मर्त्ययत्नेषु चैतन्यं महाभारतविद्यया।
अर्पयामास तत्पूर्वं यस्तस्मै मुनये नमः॥'

(मङ्गलाचरण श्लोक ३)

दण्डी से पूर्वभावी महाकवि बाण अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ कादम्बरी एवं हर्षचरित में महाभारत की कथाओं का अनेक प्रकार स्मरण करते हैं। 'पार्थरथपताकेव वानराक्रान्ता, विराटनगरीव कीचकशतावृता (पृष्ठ ६७) 'भीष्ममिव शिखण्डिशत्रुम्, पराशरमिव योजन-

गन्धानुसारिणम् (पृष्ठ १०७ तथा पृष्ठ १०८) 'महाभारते शकुनिवधः, (पृष्ठ १४३) महाभारत-पुराण-रामायणानुरागिणा, (पृष्ठ १७९) 'आसीकृतनुरिवानन्दितभुजङ्गलोका, (पृ० १८८) 'महाभारते दुःशासनापराधाकर्णनम्, (पृ० १९९) 'महाभारत-पुराणेतिहास-रामायणेषु (पृ० २६३) महाभारतमिवानन्तगीताकर्णनानन्दितनरं (पृ० ३१४) (इत्यादि कादम्बरी पूर्वभागे-हरिदास कृत कालिकाता संस्करणे शाके १८५७)।

एवमेव 'एकाकी तपस्वी वनमृगैः सह संवर्धितः·········समग्र मुद्यनमेकविंशतिकृत्वः कृत्तवंशमुत्खातवान् राजन्यकं रामः' (षष्ठउच्छ्वास पृ० २९१) 'हिडिम्बामुखचुम्बनास्वादितमिव रिपुरुधिरामृतमपायि पवनात्मजेन (षष्ठ उच्छ्वास पृ० २९२) 'जामदग्न्येन च शाम्यन्मन्यु-शिखिशिखासञ्ज्वरसुखायमानस्पर्शशीतलेषु क्षत्रियक्षतजमहाह्रदेषु अस्नायि' (षष्ठ उच्छ्वास पृ० २९२)।

'नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम् ॥' (४)
'किं कवेस्तस्य काव्येन सर्ववृत्तान्तगामिना।
कथेव भारती यस्य न व्याप्नोति जगत्त्रयम् ॥ (१०)
'कवीनामगलद्दर्पं नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥' (१२)

इति हर्षचरित उपोद्घाते। प्रायो बाणस्य समकालिकौ अष्टाध्यायां काशिकाकारौ जयादित्यवामनौ 'द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम्' (पा० सू० ४।१।१०३) इतिसूत्रे 'नैवात्र महाभारतद्रोणो गृह्यते' इति लिखतः। काशिकायां 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' (पा०सू० १।१।११) सूत्र पर महाभारत शान्तिपर्व का 'मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम।' (१७७।१२) श्लोक उद्धृत है।

इनसे भी प्राचीन मीमांसाशास्त्र व्याख्याता भट्टपाद कुमारिल अपने औत्पत्तिकसूत्र के वार्तिक में लिखते हैं—'प्रसिद्धौ हि तथा चाह पाराशर्योऽत्र वस्तुनि। इदं पुण्यमिदं पापमित्येत्तस्मिद् पदद्वये। ......' धर्म और अधर्म दोनों ही प्रसिद्ध हैं। यह बात पराशरपुत्र व्यास ने महाभारत में कही है।

इनके समकालिक दिग्गज बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति अपने प्रमाण वार्तिक में 'भारतादिष्वपि इदानीन्तनानामशक्तावपि कस्यचित् शक्ति-सिद्धेः।' (प्रमाणवार्तिक पृ० ४४७-४४८) महाभारत का स्मरण करता है।

इनसे पूर्ववर्ती वाक्यपदीयकार प्रथम काण्ड श्लोक १४२ में 'गौरिवप्रक्षरत्येका' महाभारत का यह श्लोक इतिहास नाम से उद्धृत कर रहे हैं।

इनसे प्राचीन कविकुल गुरु कालिदास जिनके सम्बन्ध में नवभारत टाइम्स ६, जुलाई १९७६ अपने दैनिक पत्र में लिखता है कि "उज्जैन के प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डा० वी० एस्० वाकांकर ने बतलाया कि उज्जैन के प्राचीन भाग में गढ़कालिका के निकट मिली ईसापूर्व शताब्दी की मुहर से महाराज विक्रमादित्य के सही काल का पता लगता है। इस मुहर पर स्वस्तिक चिह्न के साथ ईसापूर्व प्रथम शताब्दी की ब्राह्मी लिपि में उज्जैन के राजा कीर्ति का नाम खुदा हुआ है। विक्रम संवत् को पहले कीर्ति संवत् कहा जाता था। ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में पश्चिमी क्षत्रिय शासकों ने उज्जैन पर आक्रमण किया और युद्ध में उनकी हार होने के बाद विजयस्मृति के रूप में कीर्ति संवत् प्रारम्भ हुआ। वहीं एक मिट्टी की मूर्ति में शेर के दांत गिनते हुए भरत की आकृति बनी है। यह मूर्ति ईसा बाद पहली शताब्दी की है। यह प्रसङ्ग महाकवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में वर्णन

किया है। यह मुहर और मूर्ति प्रथम ऐतिहासिक प्रमाण है जिनसे महाराज विक्रमादित्य तथा कालिदास का समय ईसापूर्व प्रथम शताब्दी और ईसा बाद प्रथम शताब्दी के बीच नियत करने में सहायता मिलती है। अपने मेघदूत में—

'क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः' क्षत्रियों के विनाश की सूचना देनेवाले कुरुक्षेत्र में जाना। इससे कौरव पाण्डवों का युद्ध स्मरण कर रहे हैं।

संवत् १९१ से संवत् २१४ पर्यन्त महाराज सर्वनाथ का शासन था। उनका शिलालेख मिला है जिसमें 'एक लाख श्लोकों वाला महाभारत पराशरसुत व्यास ने बनाया' लिखा हुआ है। 'उक्तं च महाभारते—शतसाहस्र्यां संहितायां परमर्षिणा पराशरसुतेन व्यासेन।'

अब ईसवी सन् से पहले के वचन सङ्कलित किये जा रहे हैं—

वासदत्ता में उद्धृत न्यायवार्तिककार उद्योतकर (४।१।२१) गौतम सूत्र में महाभारत वन पर्व का श्लोक उद्घृत करते हैं :—

'अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं नरकमेव वा॥'

(वनपर्व ३०।२८)

यह जीव अज्ञानी है अपने लिए सुख दुःख पाने में स्वयं असमर्थ है। ईश्वर की प्रेरणा से ही वह स्वर्ग और नरक जाता है।

योगभाष्यकार पतञ्जलि अपने योगभाष्य में :—

'प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति॥

(यो० सू० १।४७)

मीमांसाभाष्यकार शवरस्वामी ने अपने मीमांसा भाष्य (८।१।२) में आदिपर्व का यह श्लोक उद्धृत किया है।

'विस्तीर्य हि महज्जालमृषिः संक्षिप्य चाब्रवीत्।
इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासधारणम्॥

(आदिपर्व १।५१)

ऋषियों ने विस्तार और संक्षेप दोनों प्रकार से वर्णन किया है क्योंकि विद्वानों को दोनों ही पद्धति प्रिय है। 'एष चाख्यानसमयः' (नि० ७।७) की व्याख्या में दुर्गाचार्य लिखते हैं—'भारते आख्यानसमयः' अर्थात् महाभारत में यही सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। (अर्थात् पुरुष रूप वाले देवता का सिद्धान्त माना गया है) पृथ्वी ने अपना भार हलका करने के लिए स्त्री रूप धारण कर ब्रह्मा से प्रार्थना की (महाभारत आदिपर्व ६४)।

अग्नि ने ब्राह्मण रूप धारण कर वासुदेव (भगवान् श्री कृष्ण) और अर्जुन दोनों से खाण्डव वन जलाने के लिए याचना की। (म० भा० आ० प० २२४-२२५) पुरुष रूप से (म० भा० आ० प० २३०) तथा अग्नि रूप से (म० भा० आ० प० २२७) खाण्डव वन को जलाया; इत्यादि स्थलों में मिलता है।

बौद्धों के प्रसिद्ध ग्रन्थ लङ्कावतार सूत्र (जिसका चीनी भाषा में अनुवाद सन् ५७ में हुआ है) उसमें भी महाभारत व्यास आदि के नाम हैं। वहाँ के श्लोक नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

'व्यासः कणाद ऋषभः कपिलः शाक्यनायकः।
निर्वृते मम पश्चात्तु भविष्यन्त्येवमादयः॥
मयि निर्वृते वर्षशते व्यासो वै भारतस्तथा।
पाण्डवाः कौरवा रामः पश्चान्मौर्यो भविष्यति॥
मौर्यानन्दाश्च गुप्ताश्च ततो म्लेच्छा नृपाधमाः।
म्लेच्छान्तं शस्त्रसंक्षोभः शस्त्रान्ते च कलियुगः॥'

मेरे निर्वाण के वाद व्यास कणाद ऋषभ कपिल और शाक्य नायक होगे। मेरे निर्वाण के सौ वर्ष वाद व्यास भारत पाण्डव कौरव राम और वाद में मौर्य होगा।

वररुचि निर्मित निरुक्त समुच्चय में—'बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति' (म० भा० आ० प० १।२६८) यह श्लोक व्यास नाम से उद्घृत है।

स्वयं महाभारत की पुष्पिका में 'शतसाहस्र्यां संहितायाम्' सौ हजार वाली संहिता में लिखा है। ये सब, महाभारत एक लाख श्लोक का है, इस में प्रबल प्रमाण हैं।

मुसलमान् इतिहास लेखक अलवेरूनी के अनुसार महाभारत १८ पर्वों का एक लाख श्लोक वाला ग्रन्थ है।

दण्डी ने 'भूतभाषामयीं प्राहुरद्भुनार्थां वृहत्कथाम्'। से जिस वृहत्कथा का स्मरण किया तथा 'प्राहुः' परोक्षभूत का रूप देकर उनसे वहुत पहले वृहत्कथा की स्थिति वतायी, दण्डी से पूर्वभावी भट्ट वाण ने भी कादम्वरी के प्रस्तावनामय मङ्गलाचरण में अतिद्वयी कथा लिख कर (वासदत्ता और वृहत्कथा) दो कथाओं की ओर संकेत किया है। उस वृहत्कथा के लेखक गुणाढ्य के समय में महाभारत विद्यमान था उसमें से उन्होंने रुरुमुनि कथा, सुन्दोपसुन्द कथा, कुन्ती दुर्वासा कथा, पाण्डु द्वारा मुनिवध कथा आदि महाभारत से लीं। इसी लिए वृहत्कथा के अनुवाद स्वरूप कथा सरित्सागर में रुरुमुनि कथा १४।७६ में है, जो महाभारत आदि पर्व आठवें अध्याय में है। सुन्दोपसुन्द कथा १५।१३५ में है जो आदिपर्व २०१ अध्याय में है। कुन्ति दुर्वासा कथा १६।३६ में हैं जो आदिपर्व ११३।३२ में है। पाण्डु मुनिवध कथा २१।२० में है जो आदिपर्व १०८ अध्याय में है। शकुन्तला की कथा ३२।१०८ में है जो आदिपर्व ६२ अध्याय में है।

महाभारत में ही महाभारत का रचनाकाल देखें तो अन्तरङ्ग परीक्षा से पता चलता है कि—

'त्रीनग्नीनिव कौरव्यान् जनयामास वीर्यवान् ।
उत्पाद्य धृतराष्ट्रं च पाण्डुं विदुरमेव च ॥
जगाम तपसे धीमान् पुनरेवाश्रमं प्रति ।
तेषु जातेषु वृद्धेषु गतेषु परमां गतिम् ॥
अब्रवीद् भारतं लोके मानुषेऽस्मिन् महानृषिः ।
जनमेजयेन पृष्टः सन् ब्राह्मणैश्च सहस्रशः ॥
शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमन्तिके ।
स सदस्यैः सहासीनः श्रावयामास भारतम् ॥'

(म० भा० आ० प०)

अर्थात् महर्षि व्यास तीन अग्नियों के समान तेजस्वी कुरुवंशीय धृतराष्ट्र पाण्डु तथा विदुर को उत्पन्न कर तप करने वन में स्थित अपने आश्रम में चले गये। उनके उत्पन्न होने बढ़ने और परम गति को प्राप्त होने के अनन्तर महर्षि व्यास ने मनुष्य लोक में महाभारत का निरूपण किया। हजारों ब्राह्मणों के साथ जनमेजय के प्रश्न करने पर अपने शिष्य वैशम्पायन को महाभारत सुनाने की आज्ञा दी। वैशम्पायन यज्ञ के सदस्यों के साथ आसीन होकर यज्ञ के मध्य-मध्य के विराम में उनसे प्रेरित होकर महाभारत सुनाया करते थे। इससे स्पष्ट है कि जनमेजय के सर्पयज्ञ के पूर्व और धृतराष्ट्र पाण्डु एवं विदुर के देहावसान के अनन्तर महाभारत संहिता की रचना हुई।

यद्यपि पाण्डु का निधन पहले ही हो चुका था तो भी धृतराष्ट्र को युद्ध के बाद बीसवें वर्ष में परम पद प्राप्त हुआ। १५ वर्ष तक तो धृतराष्ट्र युधिष्ठिर के साथ ही रहे। सोलहवें वर्ष में भीम के वाग्बाण से निर्विण्ण होकर विदुर के साथ वन चले गये।

'ततः पञ्चदशे वर्षे समतीते नराधिपः।
राजा निर्वेदमापेदे भीमवाग्बाणपीड़ितः॥'
(म० भा० आश्रमवासिकपर्व ३।१२)

वहाँ धर्माचरण करते हुए एक वर्ष बीतने पर देवर्षि नारद ने युधिष्ठिर से कहा था कि धृतराष्ट्र के जीवन के अभी तीन वर्ष शेष हैं।

'तत्राहमिदमश्रौषं शक्रस्य वदतः स्वयम्।
वर्षाणि त्रीणि शिष्टानि राज्ञोऽस्य परमायुषः॥'
(म० भा० आश्रमवासिक पर्व २०।३२)।

महाभारत का युद्ध कलि द्वापर की सन्धि में हुआ।

'अन्तरे समनुप्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः॥'
(महाभारत आदिपर्व २।१३)

अर्थात् कलि द्वापर की सन्धि में कौरव पाण्डवों का युद्ध हुआ। महाभारत युद्ध के ३६ वर्ष वीतने पर परीक्षित का राज्याभिषेक हुआ। परीक्षित ने ६० वर्ष तक राज्य किया।

महाभारत युद्ध से ९६ वर्ष पर वाल्यकाल में ही जनमेजय का राज्याभिषेक हुआ। वयस्क होने पर विवाह हुआ। विवाह के कुछ ही दिनों बाद उत्तङ्क की प्रेरणा से जनमेजय ने सर्पसत्र आरम्भ किया। उसी यज्ञ में वैशम्पायन ने महाभारत सुना था। उसी महाभारत को महर्षि व्यास ने जय नामक महाकाव्य कहा। यह 'जय' ही विविध उपाख्यानों के सहित लिखा हुआ भारतीय युद्ध का विशद इतिहास है। महाराज युधिष्ठिर के विजय के उपलक्ष में लिखे जाने के कारण उनके समय में ही इसका लिखा जाना उचित है। तथा धृतराष्ट्र के समक्ष उनका पराभव उचित न होता, अतः महाराज धृतराष्ट्र को परमपद

प्राप्ति के अनन्तर महाभारत युद्ध के वीस वर्ष बाद और ३६ वें वर्ष के पहले ही महाभारत संहिता निर्माण का समय है।

इसका निष्कर्ष यह है कि—महाभारत के ही प्रमाण वचनों से सिद्ध होता है कि महाभारत युद्धकाल से वीस वर्ष बाद धृतराष्ट्र का परलोक-वास हुआ था। धृतराष्ट्र के मरने के बाद और जनमेजय के सर्प सत्र के पूर्व महाभारत की रचना हुई है।

जनमेजय का अभिषेक कलि के ६० वर्ष अथवा ९६ वर्ष वीतने पर हुआ। महाभारत आदि पर्व ४९।१७ और सौप्तिक पर्व १६।१५ में लिखा है कि राजा परीक्षित ने ६० वर्षों तक राज्य किया और कलि गताब्द ३६ के बाद उनका शासन आरम्भ हुआ। इसके अनुसार महाराज जनमेजय का अभिषेक काल कलिगताब्द ९६ वर्ष प्रमाणित होता है। आदि पर्व ४९।२६ के अनुसार ६० वर्ष की अवस्था में परीक्षित का देहान्त हुआ। परीक्षित का जन्म काल और कलियुग का आरम्भ काल एक ही है। इसके अनुसार जनमेजय का अभिषेक कलि गताब्द ६० में ही प्रमाणित होता है। जिन श्लोकों में ६० वर्षों तक शासन करने की बात कही गयी है उनका अभिप्राय भी ६० वर्षों तक की अवस्था से ही समझना चाहिये। जनमेजय का राज्याभिषेक छोटी ही अवस्था में हुआ था। अतएव अभिषेक के २४ वर्ष बाद सर्प सत्र हुआ था। इससे यह भी प्रमाणित हो जाता है कि महाभारत की रचना कलिगताब्द २० वर्ष के बाद और कलि गताब्द ८४ वर्ष के पूर्व हुई होगी।

महाराज युधिष्ठिर कलि गताब्द ३६ में भगवान् श्रीकृष्ण के परम धाम पधारने के पश्चात् दिवंगत हुए थे। यह महाभारत संहिता युधिष्ठिर के विजयोपलक्ष्य में जयेतिहास के रूप में अनेक उपस्थानों के साथ रची गई थी। अतः उसकी रचना युधिष्ठिर के राजत्व काल और भगवान् कृष्ण के परम धाम पधारने से पहले ही हुई थी। यह

स्वाभाविक वात है कि जिस राजा का विजय इतिहास लिखा जाता है। प्रायः उसके शासन काल में ही लिखा जाता है। अतएव कलि गताब्द २० वर्ष बाद महाराज धृतराष्ट्र के स्वर्गवास के पश्चात् युधिष्ठिर के शासन काल में ही कलि गताब्द ३६ के पूर्व ही महाभारत की रचना प्रमाणित होती है। महाभारत की रचना तीन वर्षों में पूर्ण हुई थी। श्री गणेश जी ने उसे लिखा था। इस प्रकार महाभारत का रचना काल विक्रम संवत् पूर्व ३०६४ और विक्रम संवत् पूर्व ३०८० के मध्य एवं ई० सन् पूर्व ३०१२ और ई० पूर्व ३१३७ के बीच में ही प्रमाणित होना है, और महर्षि वैशम्पायन ने उसी महाभारत को कलियुगारम्भ से ८४ वें वर्ष विक्रम संवत् पूर्व ३१२८, ई० सन् पूर्व ३१८५ में महाराज जनमेजय को सर्पसत्र के अवसर पर सुनाया था। महाभारन युद्ध काल ही कलि प्रारम्भ (कलि संवत्) अथवा युधिष्ठिर संवत् कहा जाता है। ज्योतिष ग्रन्थों, पञ्चाङ्गों में परम्परा से वही संवत् चला है।

इसके अतिरिक्त कुछ शिलालेखों में भी इस कलि संवत् का उल्लेख है। इसका आरम्भ ईसवी सन् से ३१०२ वर्ष पूर्व माना जाता है। दक्षिण के चालुक्यवंशी राजा पुलकेशी के समय एहोले की पहाड़ी पर के जैन मन्दिर का शिलालेख भारत युद्ध से ३७३५ वर्ष बीतने पर और शक राजाओं के ५५६ वर्ष बीतने पर बना है। वहाँ के श्लोक हैं—

'त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु॥
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतीषु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥'

यह मन्दिर आज से १३४२ वर्ष पहले बना है। ३७३५ में १३४२ मिलाने पर ५०७७ वर्ष होता है। यही सं० २०३३ तथा

शाके १८९८ के (इस वर्ष के) पञ्चाङ्ग में गतकलि ५०७७ वर्ष लिखा है।

क्रिश्चियन लासेन ने सन् १८३७ में अपनी पुस्तक 'इण्डियन एक्टीविटीज' में कहा कि—"जिस भारत को सूत ने कहा था वह वास्तव में मूल पुस्तक भारत का द्वितीय संस्करण है। इसीलिए 'आश्वलायन गृह्यसूत्र' में भारत और महाभारत का उल्लेख मिलता है। आश्वलायन का समय ईसवी सन् पूर्व ३५० हो सकता है, इस प्रकार महाभारत का निर्माण काल ईसापूर्व ४६० वर्ष से पहले का नहीं हो सकता।"

वेबर की दृष्टि में पाणिनि के साहित्य में वासुदेव, अर्जुन आदि का उल्लेख होने पर भी भारत या महाभारत का उल्लेख नहीं है; अतः पाणिनि के समय तक महाभारत की रचना नहीं हुई।

मेगस्थनीज ने भी भारत महाभारत का उल्लेख नहीं किया. सुतरां पाणिनि पूर्वभावी आश्वलायन के गृह्यसूत्र में भारत, महाभारत का उल्लेख प्रक्षिप्त है।

लुडविग ने सन् १८८४ से महाभारत पर विचार प्रारम्भ किया। उनकी राय में न तो महाभारत कोई इतिहास है और न तो पाण्डव ऐतिहासिक पुरुष। पाण्डु का अभिप्राय है पीला सूर्य, धृतराष्ट्र के अन्धेपन का अर्थ है शरत्कालीन सूर्य और गान्धारी की आँखों पर पट्टियाँ बाँधने का अर्थ है सूर्य का बादलों में छिप जाना तथा वसन्त के सूर्य का नाम है कृष्ण।

होज्मान ने कहा है कि—'पाण्डव और उनके पक्षपाती कृष्ण छली कपटी थे। उन्हीं लोगों की ओर से युद्ध में छल हुआ। कौरवों का नाम वेद और ब्राह्मणों में आता है अतः वे प्राचीन हैं। वे ही धर्मभीरु और न्यायप्रिय हैं।

'किसी ने बौद्धराजा, सम्भवतः अशोक, की प्रशंसा में एक काव्य लिखा। ब्राह्मणों द्वारा बौद्धधर्म का पराभव होने पर ब्राह्मणों ने उस काव्य में कुछ हेर-फेर कर उसे अपने साँचे में ढाल लिया तथा कौरवों की प्रशंसा पाण्डवों के नाम कर दी और धीरे-धीरे बौद्धधर्म का नाम भी उड़ा दिया।'

मैक्समूलर ने कुछ अंशों में लासेन के मत का अनुसरण किया और उनकी दृष्टि में महाभारत एक कवि की कृति नहीं है। परन्तु उसके सभी रचयिता गण मनुप्रोक्त धर्म के पक्के अनुयायी ब्राह्मण रहे होंगे। ब्राह्मण सम्प्रदाय में शिक्षा होने पर भी पाँचो भाई एक स्त्री से विवाह कर बैठे। प्रत्यक्ष धर्म विरुद्ध इस घटना पर ब्राह्मण सम्पादकों ने तरह-तरह के रङ्ग चढ़ाये परन्तु यह छिपा न रह सका।

बुल्हर के अनुसार महाभारत कोई इतिहास या पुराण नहीं।

ब्राडर का कहना है कि ईसा के जन्म से ५०० या ४०० वर्ष पहले जब ब्रह्मा सर्वप्रधान देवता माने जाते थे, उस समय आदि कवि ने कुरुभूमि में जन्म ग्रहण किया होगा। वह गायक रहा होगा। उसने लोगों के मुख से अज्ञात जाति के हाथ कुरुवंश की पराजय सुनी होगी। उसी वियोगान्त घटना के आधार पर उसने स्वदेशी वीरों को क्षात्रधर्म के मूर्तिमान् आदर्श तथा यदुवंशी वीर कृष्ण के साथ पाण्डव, मत्स्य आदि विजातियों को नीच कुलोद्भव और अन्याय से विजयी बतलाकर चित्रित किया होगा। वही प्राचीन भारतगान आश्वलायनगृह्यसूत्र में उल्लिखित है। उसके बहुत समय बाद कृष्ण-जन्म के अनन्तर कृष्णभक्त पुरोहितों ने बुद्ध के विरुद्ध कृष्ण या विष्णु को खड़ा किया। पाण्डुवंशियों की सहायता से पुरोहितों की चेष्टा सफल हुई, और चौथी शताब्दी में विष्णु ही प्रधान देव हुए। फिर तो पुरोहितों ने आदि महाभारत में पाण्डवों की अपकीर्ति को कीर्तिरूप

में और उनके विपक्षी कुरुओं की कीर्ति को निन्दारूप में वदल कर आदि महाभारत का कलेवर परिवर्तित कर दिया, और दाक्षिणात्य पाण्डुवंश को कुरुवंश की एक शाखा के रूप में मान लिया।'

डेन्मार्क के डाक्टर सोर्यनसन कोपेन हेगेन विश्वविद्यालय के अध्यापक थे। 'महाभारत और भारतीय संस्कृति में उसका स्थान' शीर्षक निवन्ध लिखने के कारण उन्हें आचार्य पदवी मिली। वे महाभारत का मूल कोई प्राचीन पौराणिक गाथा और उसका रचयिता एक ही व्यक्ति मानते हैं।'

वुल्हर कोजे नेसिस दे ने महाभारत को कई पीढ़ियों में धीरे-धीरे विकसित काव्य माना है। किन्तु उसकी रचना एक ही समय में सम्पादक मण्डल द्वारा वे मानते हैं। वे युद्ध को कोरी कवि कल्पना मानते हैं। उनका कहना है कि महाभारत एक रूपक है, जिसमें पाण्डव धर्म के और कौरव अधर्म के प्रतिनिधि रूप में दिखाये गये हैं।

उनके शिष्य डालमान ने उनके सिद्धान्तों की पूर्ण व्याख्या करते हुए बताया है कि पहले दो प्रकार के साहित्य रहे होंगे:—(१) राजवंशों की पौराणिक गाथायें और (२) उपदेशपरक कवितायें। सर्वसाधारण में प्रचार की दृष्टि से इन दोनों भावों को मिलाकर कविमण्डल ने एक नवीन रचना कर दी, वही महाभारत है।

यह सव पाश्चात्यों का आक्षेप है। वस्तुतः वे लोग ईसाई मत के प्रचार को ध्यान में रखकर हमलोगों के साहित्यों को देखते हैं, विचार करते हैं और प्रमाण कुछ भी उपस्थापित नहीं करते जिससे उनकी वात प्रमाण की कसौटी पर खरी उतरे। वस्तुतः अतीत व्यक्तियों एवं घटनाओं के सम्वन्ध में इतिहास को छोड़कर और कोई भी दूसरा प्रमाण हो नहीं सकता। अटकल मात्र से न तो कुछ सिद्ध ही होगा और न विद्वानों को सन्तोष ही। जव कि जिस ग्रन्थ के विषय में

अटकल लगायी जा रही है उस ग्रन्थ से ही वह अटकल विरुद्ध ठहरता है। महाभारत में ही जयभारत या महाभारत का निर्माता कृष्ण-द्वैपायन व्यास को ही कहा गया है तथा महाभारत के निर्माण का समय भी उसने दिया है। फिर उसके विरुद्ध अटकलवाजी का क्या महत्त्व हो सकता है।

इन सभी पाश्चात्यों ने परस्पर विरुद्ध अटकल भी लगाई हैं। कोई महाभारत को एक कर्तृक, कोई अनेक कर्तृक, कोई एक काल में निर्मित और कोई भिन्न-भिन्न काल में निर्मित मानते हैं। उनकी दुरभिसन्धि का यह जाज्वल्यमान उदाहरण है कि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 'महान् व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबालभारभारतहैलिहिलरौरवप्रवृद्धेषु' (पा० ६।२।३८) में महाभारत का स्मरण किया है, और वे लोग पाणिनि द्वारा उल्लेख न मानकर आश्वलायन गृह्यसूत्र में भारत-महाभारत का नाम क्षेपक मानने पर उतारू हैं। व्रीहि, अपराह्ण, गृष्टि, इष्वास, जाबाल भार भारत हैलिहिल, रौरव और प्रवृद्ध शब्दों के परे रहें।—महान् शब्द को अन्तोदात्त स्वर होता है, जैसे महाव्रीहि महापराह्ण आदि में अन्तोदात्त होता है वैसे ही महाभारत में भारत शब्द परे रहते महान् शब्द को अन्तोदात्त होता है। इस सूत्र से पाणिनि ने महाभारत शब्द बनाया है। फिर वेबर द्वारा यह कहना कि पाणिनि ने भारत-महाभारत का स्मरण नहीं किया यह अत्यन्त मिथ्या एवं प्रलाप मात्र है।

उनमें से किसी के पास एक भी ठोस प्रमाण नहीं है जिससे वे लोग अपनी अटकलवाजी को प्रमाण की कसौटी पर खरी उतार सकें। उसके विपरीत हमारे महाभारतान्तर भावी सभी साहित्यों में महाभारत का और उसके व्यास कर्तृकत्व का उल्लेख मिलता है; जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। श्रुतियों में जहाँ विरोधाभास दीखता है अर्थात् परस्पर विरुद्धार्थक दो श्रुतियाँ दीखती हैं वहाँ

समन्वय से उनका अर्थ किया जाता है। उत्तरमीमांसा में तो समन्वयाध्याय एक अध्याय ही व्यास जी ने रखा है।

पूर्व मीमांसा में भी समन्वय वताया गया है। उसी पद्धति से महाभारतादि में भी समन्वय करना चाहिए। जो हमारी चीज है; हमारे लाखों पीढ़ी करोड़ों पीढ़ी के पूर्वजों से हमें प्राप्त है उसके अर्थ का प्रकार हमलोगों से ही समझना चाहिए। मनमानी अटकल नहीं भिड़ानी चाहिए। धर्म में वही इतिहास प्रमाण रूप से आदरणीय होते हैं जो धर्मशास्त्र के अविरुद्ध होते हैं। आधुनिक समय में भी व्यवहार संविधान के अनुसार होता है, इतिहास के अनुसार नहीं। क्योंकि इतिहास दुर्भाग्यपूर्ण भी हो सकता है। भारतीयों के अनुसार जो महाभारत में है, वही अन्यत्र है। जो महाभारत में नहीं वह कहीं नहीं। 'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्' तर्पण के प्रसङ्ग में आश्वलायन गृह्यसूत्र में 'सुमन्तुजैमिनिवैशम्पायनपैलसूत्रभाष्य भारतमहाभारत धर्माचार्याः' यह कहा है। इसका अर्थ है कि सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन, पैल, सूत्र, भाष्य, भारत और महाभारत नाम के धर्माचार्य तृप्त हों। ये भारत और महाभारत धर्माचार्य हैं, कोई ग्रन्थ नहीं।

देवी भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के बीसवें अध्याय में इस सूत्र की व्यख्या है।

'सुमन्तुर्जैमिनिर्वैशम्पायनः पैलसूत्रयुक्।
भाष्यभारतपूर्वश्च महाभारतइत्यपि॥
धर्माचार्या इमे सर्वे तृप्यन्त्विति च कीर्तयेत्॥ २०॥'

इसकी टीका में नीलकण्ठ कहते हैं—'सुमन्तु जैमिनि वैशम्पायन-पैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्यास्तृप्यन्तु इत्येको मन्त्रः सूत्रानुरोधात्। अर्थात् ये सब धर्माचार्य हैं एक ही में सबका नाम लेकर तर्पण करना चाहिए। क्योंकि सूत्र में वैसा ही कहा गया है।

... इसी प्रकार कलियुग में कब्र की पूजा होगी; लोग देवता पूजन नहीं करेंगे। स्थान-स्थान पर कब्र ही दृष्टिगोचर होंगी, मन्दिर कम दीखेंगे। यह सब महाभारत में देखकर कुछ लोगों ने कहा कि बुद्ध के मरने के बाद उनका शरीर दफनाया गया उसके बाद ये श्लोक पीछे से जुड़े हैं। किन्तु ऐसी बात नहीं है। मार्कण्डेय-महर्षि कलियुग में भविष्य कैसा होता है यह बता रहे हैं। उन्होंने कई प्रलय देखे हैं उस प्रसङ्ग में ये श्लोक कहे गये हैं। श्लोक नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

'एडूकान् पूजयिष्यन्ति वर्जयिष्यन्ति देवताः।
६५।७ (म० भा० वनपर्व १९०)

'एडूकचिह्नपृथ्वी न देवगृहभूषिता।'
भविष्यति युगे क्षीणे तद्युगान्तस्य लक्षणम्॥
६७।७ (म० भा० वनपर्व १९०)

इसी का समर्थन विष्णु. वायु, मत्स्य पुराण से होता है।

महाभारत से आज तक

पौराणिक राजवंशावलियों और महाभारत संहिता आदि संस्कृत ग्रन्थों से प्रमाणित कलियुगारम्भ काल (जो कि विक्रम संवत् पूर्व ३०४५ और ईस्वी सन् पूर्व ३१०२ है) वह ही महाभारत युद्ध काल है और वह ही परीक्षित का जन्मकाल है। महाभारत युद्धारम्भ के प्रथम दिन शुक्लादि चान्द्रमासानुसार मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को भगवान् श्रीकृष्ण ने युद्ध स्थल में दोनों सेनाओं के मध्य अर्जुन को भगवद्गीता का उपदेश दिया। उससमय मार्गशीर्ष (पौष) कृष्ण पक्ष १३ दिन का था। अतः शुक्ल पक्ष के ५ दिन और कृष्ण पक्ष के १३ दिन सब मिलकर १८ दिन में मार्गशीर्ष कृष्ण (पौषकृष्ण) अमा को महाभारत युद्ध की समाप्ति हुई थी।

महाराज युधिष्ठिर के समकालीन मगध देश के महाराज जरासन्ध के पौत्र और महाराज सहदेव के पुत्र महाराज सौमाधि (अथवा सौमापि) से लेकर इस वंश के २२ वें राजा अरिंजय (अथवा रिपुंजय) तक का राज्यकाल एक सहस्र वर्ष ही पुराणों के अनुसार सिद्ध होता है।

इस वंश के अनन्तर प्रद्योत वंश प्रारम्भ होता है। इस वं मेंप्रद्योत से लेकर नन्दिवर्धन तक ५ राजा हुए हैं। इनका राजत्व (शासन) काल १३८ वर्ष है।

प्रद्योत वंश के अनन्तर शिशुनाग वंश का राज्य प्रारम्भ होता है। इस वंश में शिशुनाग से लेकर महानन्दी तक १० राजा हुए हैं। इनका शासन काल ३६२ वर्ष है। यह सब संख्या १०००+१३८+३६२=१५०० होती है। इन १ ०० वर्षों के वाद महापद्मनन्द के वंश का राज्य है। स्वयं महापद्मनन्द का राज्य ८८ वर्ष और उनके सुमाल्यादि ८ लड़कों का राज्य १२ वर्ष अर्थात् लड़कों सहित महापद्मनन्द के राज्य का समय १०० वर्ष है। यह युधिष्ठिर संवत् या कलि संवत् १६०० वर्ष तक का राज्यकाल है। कलि संवत् १६०१ में मौर्य वंश (चन्द्रगुप्त) का राज्यकाल प्रारम्भ होता है। यह काल विक्रम संवत् पूर्व १४४५ वर्ष और ईसा पूर्व १५०२ वर्ष होता है। इस प्रकार कलि संवत् प्रारम्भ के समय से मगध राजवंश के २२ प्रद्योत वंश के ५ और शिशुनाग वंश के दश तथा महापद्मनन्द के दो कुल ३९ राजा होते हैं। चालीसवां राजा मौर्य वंश का चन्द्रगुप्त है। इस वंश में दश राजा हुए हैं जिनका शासन काल १३७ वर्ष है। यहाँ तक का समय युधिष्ठिर संवत् अथवा कलि संवत् १७३७ तक होता है।

इसके वाद शुङ्गवंश का राजत्व काल है जिसमें पुष्यमित्रादि

दश राजा हुए हैं। इनका शासन काल ११२ वर्ष है। इसके बाद कण्व वंश का राजत्व काल है। इसमें वसुदेवादि चार राजा हुए हैं। इनका शासम काल ४५ वर्ष है। इसके अनन्तर आन्ध्रवंश का शासन काल है। इसमें वलिपुच्छकादि तीस राजा हुए हैं। इनका शासन काल ४५६ वर्ष है। ११२+४५+४५६=६१३ वर्ष। यह समय युधिष्ठिर संवत् २३५० तक होता है।

युधिष्ठिर संवत् २३५१ में आभीरवंशी राजाओं का राज्य प्रारम्भ होता है जो विक्रम संवत् पूर्व ६९५ वर्ष और ईसा पूर्व ७५२ वर्ष है।

ऊपर कहा जा चुका है कि मौर्य वंशीय चन्द्रगुप्त का राज्यकाल युधिष्ठिर संवत् अथवा कलि संवत् १६०१ से प्रारम्भ होता है। इसका शासन काल २४ वर्ष है। अर्थात् विक्रम संवत् पूर्व १४४४ और ईसा पूर्व १५०१ वर्ष में चन्द्रगुप्त का शासन काल प्रारम्भ होकर कलि संवत् (या युधिष्ठिर संवत्) १६२४ विक्रम पूर्व १४२० ईसा पूर्व १४७७ में समाप्त होता है। कलि संवत् (या युधिष्ठिर संवत्) १६२५ विक्रम पूर्व संवत् १४२१ ईसा पूर्व १४७८ में विन्दुसार का शासन प्रारम्भ होता है। इसका शासन काल २५ वर्ष है। इसके वाद अशोक का शासन काल कलि संवत् (या युधिष्ठिर संवत्) १६५०, विक्रम संवत् पूर्व १३९६, ईसा पूर्व १४५३ से प्रारम्भ होकर २६ वर्ष अर्थात् कलि संवत् (या युधिष्ठिर संवत्) १६७६ तक अर्थात् विक्रम संवत् पूर्व १३७० ईसा पूर्व १४२७ वर्ष तक है।

ऐसी स्थिति में पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन काल ईसा पूर्व ३२३ वर्ष की कल्पना निराधार है।

भारतीय इतिहासों के अन्वेषण के लिए सर्वप्रथम 'एशियाटिक सोसाइटी' कलकत्ता, संस्था की स्थापना हुई। इसमें सर विलियम

जॉन्स ने भारतीय इतिहास के विषय में सर्वप्रथम एक वक्तव्य दिया था। उसमें उन्होंने यूनानी इतिहास लेखकों की नगरी 'पालिबोथ्रा' को पाटलिपुत्र का अपभ्रंश और 'सेण्ड्रा कॉटस' को पौराणिक मौर्य वंशीय चन्द्रगुप्त का अपभ्रंश बताया था तथा चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण काल ईसवी सन् पूर्व ३२२ वर्ष सिद्ध किया था। अब इस पर विचार करना चाहिए कि यह कहाँ तक उचित है ?

मेगस्थनीज का भारत भ्रमण (जो हिन्दी में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा अनूदित हुआ है) में लिखा है—'डायनुशस पश्चिम से आया।............उसी वंश में हेरावलीज..........भी हुआ था, जो साधारण मनुष्यों से बल बुद्धि में बड़ा था और उसने बहुत सी स्त्रियों से विवाह करके बहुत से पुत्र उत्पन्न किये......। उसने बहुत से नगर बसाये, जिनमें सबसे बड़ा और विख्यात नगर पालिबोथ्रा है।

महाभारत मीमांसा पृ० ९१ में मेगस्थनीज की पुस्तक का अवतरण दिया हुआ है। उसमें हेराक्लीज से सेण्ड्राकॉटस तक १३८ पीढ़ियाँ दी है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सेण्ड्राकॉटस से १३८ पीढ़ी पहले 'पालिबोथ्रा' बसी थी।

प्रसिद्ध इतिहास विशारद प्लायनी ने लिखा है कि पालिबोथ्रा नगर गंगा और ईरानाबोअस के संगम से २०० मील ऊपर की ओर स्थित था। एस० डी० आनविल्ले के मत से 'ईरानाब्रोअस' यमुना नदी है। इससे यह सिद्ध होता है कि गंगा यमुना के संगम से २०० मील ऊपर की ओर पालिबोथ्रा बसी थी। सर विलियम जॉन्स के वक्तव्य के अनुसार आरायन के मत से गंगा और ईरानाबोअस का संगम प्रसई (प्रस्सी) जनपद में था। कर्टियस का मत है कि मेगस्थनीज का पालिबोथ्रा प्रभद्रक (या पारिभद्रक) जनपद है।

उपर्युक्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि गंगा यमुना के संगम से ऊपर की ओर २०० मील पर पालिबोथ्रा नगरी सेण्ड्राकॉटस से लगभग २८ सौ वर्ष पहले बसाई गई थी। आधुनिक विद्वानों के

-अनुसार प्रतिपीढ़ी २० वर्ष मानने पर १३८ पीढ़ी में २७६० वर्ष होते हैं। वर्तमान में पाटलिपुत्र प्रयाग से लगभग ढाई सौ मील नीचे की ओर है।

पुराणों के अनुसार शिशुनाग वंश के आठवें राजा उदायी (अथवा उदासी) ने जिसका राज्याभिषेक कलि संवत् (युधिष्ठिर संवत्) १३८५ (अर्थात १६६१ वर्ष विक्रम संवत् पूर्व, तथा १७१८ वर्ष ईस्वी सन् पूर्व में हुआ था) अपने अभिषेक से चौथे वर्ष में गंगा के दक्षिण तट पर कुसुमपुर (अर्थात् पाटलिपुत्र) बसाया। इसके विपरीत पालिवोथ्रा के बसाये जाने का समय ईसा पूर्व ३०८२ वर्ष के लगभग होता है और उसके बसाने वाले का नाम हेराक्लीज लिखा है तथा पाटलिपुत्र के वसाये जाने का समय ईसवी पूर्व १७१५ है और उसका बसाने वाला शिशुनाग वंशीय आठवां राजा उदायी (अथवा उदासी) है। अतः पालिवोथ्रा किसी भी तरह पाटलिपुत्र नहीं हो सकती और न तो सेण्ड्राकॉटस चन्द्रगुप्त मौर्य ही हो सकता है। इसी प्रकार 'जैन पुस्तक परिशिष्ट' पटवन में भी पाटलिपुत्र को शिशुनाग वंशीय आठवें राजा द्वारा वसाया हुआ लिखा है।

वृहत्संहिता में लिखा है—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षट् द्विकपञ्च द्वियुतः शककालः तस्य राज्ञश्च॥
(अध्याय १३ श्लोक ३)

अर्थात् महाराज युधिष्ठिर के शासन काल में सप्तर्षि मघा नक्षत्र मे थे। महाराज युधिष्ठिर के २५२६ वर्ष में शक प्रवृत्त हुआ है। इसके समर्थन में भट्टोत्पल ने अपनी वृहत्संहिता की विवृत्ति में वृद्धगर्ग का निम्न वचन उद्धृत किया है—

कलिद्वापरसन्धौ तु स्थितास्ते पितृदेवतम्।
मुनयो धर्मनिरता......................॥

उपर्युक्त वाराही-संहिता में शक शब्द से सम्प्रति प्रचलित शालि वाहन शक नहीं समझना चाहिए। किन्तु शक का अर्थ है संवत्। कल्हण ने उसका अर्थ भ्रमवश शालिवाहन शक समझ लिया। अर्थात् २५२६ कलिगताब्द (अथवा युधिष्ठिर संवत् गताब्द) में शक का प्रारम्भ हुआ। उस संवत् में शक का प्रारम्भ समझ कर कल्हण ने ६५३ वर्ष अधिक देखा और उतनी संख्या सभी संवतों में घटाकर प्रयोग किया।

पाश्चात्य विद्वानों में विशेष कर जेनरल प्रिंसेव और जेनरल वंकिघम ने सर विलियम के वक्तव्य को प्रमाणित मानकर जिन गुहाभिलेखों, स्तम्भाभिलेखों तथा शिलालेखों की खोज की है। उनमें चौदह प्रज्ञापनवाले लेख में अन्तियोक आदि पाँच नामों को यूनान के भिन्न-भिन्न भागों के राजाओं की कल्पना की है। उन को ईसवी संवत् पूर्व २५८, या प्रज्ञापनों का अंकित होना मानकर अभिलेखों के लिखाने वाले राजा को अशोक के समय का प्रतिपादित किया है।

वस्तुनः अशोक के शिलालेख धर्म लेख नाम से प्रसिद्ध है देवानां प्रिय, प्रियदर्शी राजा तथा देवानां अथवा प्रियदर्शी। विना किसी व्यक्ति के नाम के द्वारा लिखाये गये जितने धर्म-लेख अब तक गुहाओं, स्तम्भों तथा शिलाओं में पाये गये हैं वे धर्मलेख कब लिखे गये ? इसका उनमें कोई उल्लेख नहीं है। न तो संवत् का उल्लेख मिलता है। उपलब्ध समस्त तथा कथित अभिलेख राजा अशोक के हैं। एक में अशोकस् ये चार अक्षर मिलते हैं। शेष किसी भी लेख में अशोक का नाम नहीं है। इतना ही नहीं अभिलेखों में देवानां प्रियः, प्रियदर्शी राजा की द्विरुक्ति, त्रिरुक्ति तो की गई है, किन्तु अशोक इन तीन अक्षरों का उल्लेख नहीं है। अतः वे सब धर्मलेख अशोक वर्धन के माने जाने में कोई तर्क नहीं है। क्योंकि जिन विषयों का वर्णन सातवें स्तम्भाभिलेख दूसरे तथा तेरहवें प्रज्ञापन में है ठीक उसी प्रकार का वर्णन चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने

भारत में हर्षवर्धन के राज्यकाल वर्णन के प्रसंग में किया है। पाश्चात्यों के मतानुसार यदि ये सभी धर्मलेख अशोक के मान लिए जाते हैं तो पौराणिक राजवंशावलियों के राजत्व कालों के आधार पर मौर्य अशोकवर्धन का राजत्व काल कलि संवत् १६५० विक्रम स० पूर्व १३६६ ई० पू० १४५३ से लगाकर कलि संवत् १६७६ वि० पू० १३७० ई० पू० १४२७ तक २६ वर्ष होता है। ऐसी दशा में शिलालेख के प्रज्ञापनों में यूनान के उन पाँच राजाओं के नाम पढ़ना जिनके राजत्व काल ई० पू० २८५ से लेकर २३६ तक माने गये हैं सर्वथा भ्रान्ति ही है।

पाश्चात्यों के विद्याव्यसन लगन एवं अनुसंधान पराय ता प्रशंसनीय हैं, किन्तु जब हमारे वेद शास्त्र इतिहास की छानवीन करने बैठते हैं तव वे उलटे परिणाम पर पहुँचते हैं। लार्ड मैकाले ने लिखा है कि पाश्चात्य शिक्षा पाये हुए किसी हिन्दू को मूर्ति पूजन में विश्वास नहीं रह जायेगा।

मैक्समूलर ने तो यहाँ तक कहा कि वेद मंत्र दकियानूसी और निरर्थक हैं। महाभारत एक व्यक्ति की कृति नहीं। अपनी पुस्तक 'चिप्स फ्राम दि जर्मन वर्कशाप' में वे और लिखते हैं कि वेद हिन्दू धर्म की चाभी हैं। उनके दृढ़ तथा दुर्वल स्थानों का ज्ञान ऐसे मिशनरियों के लिए अनिवार्य है जिसे ईसाई वनाने की उत्कट इच्छा है। ऐसे वाक्यों से उनके समस्त मनोभावों का पता लगता है।

भारतीय ज्योतिर्विज्ञान और महाभारत

पाश्चात्यों का यह भी मत है कि भारतीय ज्योतिर्विज्ञान महास्थूल गणना वेदांग ज्योतिष की गणना से भी स्थूल थी। जिसके अनुसार भीष्म पितामह ने १३ वर्ष के सौर मान में तेरह वर्ष पाँच महीने वारह दिन की व्यवस्था विराट पर्व में दी थी। सिद्धान्त गणित का ज्ञान भारतीयों को यूनानी ज्योतिषियों से हुआ है तथा उन्हीं से

नक्षत्र मंडल की १२ राशियों का विभाग करना भी सीखा। भारत में तो सूर्यादि सप्तवारों की भी जानकारी नहीं थी। वारों का ज्ञान काल्डियां वालों से हुआ। अतएव जिन ग्रन्थों में बारह राशियों का विभाग, सूर्यादि वारों का नाम तथा ज्योतिष सिद्धान्त गणना का उल्लेख है वे सभी ग्रन्थ ई० सन् पूर्व ४०० वर्ष से प्रथम नहीं हो सकते जिन ग्रन्थों में चैत्रादि मासों का उल्लेख है वे भी वेदांग ज्योतिष एवं ब्राह्मण ग्रन्थों के बीच के माने जाने चाहिये। जिन ग्रन्थों में यवन जाति की विद्वत्ता, आक्रमणकारिता, वीरता का उल्लेख है वे सभी ग्रन्थ सिकन्दर के आक्रमण ई० सन् पूर्व ३२३ के पीछे के हैं। ई० स० पूर्व पांच सौ वर्ष के नहीं हैं। परन्तु उनकी उक्त कल्पना में भ्रान्ति या ईर्ष्या मूलकता ही है। ग्रीक देश के अर्थ में ई० सन् पूर्व कुछ शतियों से यूनान नाम की प्रसिद्धि हुई है।

महाराज ययाति के पुत्र तुर्वसु एवं उनके पुत्र यवन राजाओं की प्रसिद्धि बहुत पुरानी है। महाभारत आदि पर्व ८५।३४ में कहा गया है—'यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवनाः स्मृताः'—यदु से यादव हुए हैं और तुर्वसु से यवन। उनका राज्य यवन राज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मनु ने मनु स्मृति १०।४३-४५ में बताया है कि पाण्ड्य, चोल, द्रविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, दरद, खश आदि क्षत्रिय संस्कारों के लोप होने तथा ब्राह्मण सम्बन्ध हीन होने से वृषल (म्लेच्छ) हो गये। इन्हीं राज्यों का वर्णन अशोक के प्रज्ञापन दो, पाँच और तेरह में आया है। उससे भी और प्राचीन ग्रन्थों में भी यूनान बनने के सहस्रों वर्ष पूर्व चन्द्रवंशी ययाति के पौत्र यवन के वंशधरों के अर्थ में ही यवन शब्द का उल्लेख हुआ है न कि यूनान के यूनानियों के अर्थ में। अतः महाभारतादि ग्रन्थों में यवनों के पराक्रम का वर्णन है। ज्योतिष विज्ञान सम्बन्धी पाश्चात्यों की धारणा भी

गलत है। भारतीय ज्योतिर्विज्ञान सृष्टि से लेकर अन्त तक एक एवं निर्विकार है।

विराट पर्व में राजर्षि भीष्म पितामह के तेरह वर्ष की प्रतिज्ञा के विषय में जो कहा गया है कि उस समय तक १३ वर्ष पाँच महीने बारह दिन द्यूतक्रीड़ा के दिन से बीत जायेंगे। इससे यही स्पष्ट है कि भारतीय युद्ध काल में भी हमारी वही सनातन काल गणना राष्ट्र मिति के रूप में मान्य थी। जिसके अनुसार श्री रामचन्द्र ने १४ वर्ष का वनवास पूर्ण किया। उसी के अनुसार पाण्डवों ने तेरह वर्ष की प्रतिज्ञा पूरी की थी। वह गणना है सौर चन्द्र जिसका वर्ष चैत्रशुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ होकर चैत्र कृष्ण अमावस्या को पूरा होता है। उसमें वर्ष मान कम से कम ३५४ और अधिक से अधिक ३८४ दिन होते हैं। उसी वर्ष के अनुसार कौरवों के ठीक चौदहवें वर्ष के प्रथम दिन में वेदांग ज्योतिष के गणनानुसार १३ वर्ष पाँच महीने बारह दिन होते हैं।

उदाहरणतः यदि द्यूत क्रीड़ा की तिथि विक्रम संवत् १९९० जेष्ठ कृष्ण ८ बुधवार मान लिया जाय तो उस दिन है राश्यादि सूर्य १।३।३०।४१ और तारीख १७ मई सन् १९३३ ई० अर्जुन के प्रकट होने की तिथि विक्रम संवत् २००३ ज्येष्ठ कृष्ण ८ शुक्रवार माने तो उस दिन राश्यादि सूर्य हैं। १।९।५२।९ ता० १४ मई सन् १९४६ ई०। ऐसी स्थिति में सौर चन्द्र मान से १३ वर्ष एक दिन होगा। १४ वें वर्ष का पहला दिन वही सौर मान से होगा। १३ वर्ष ६ दिन अंग्रेजी मान से होगा। वही वेदांग ज्योतिष के चन्द्र मान से होगा १३ वर्ष ५ महीने १२ दिन। यही भीष्म जी की व्यवस्था है। इससे स्पष्ट है कि महाभारत युद्ध काल में सिद्धान्त ज्योतिष के अनुसार ही पञ्चांग गणना होती थी। ऊपर का उदाहरण सिद्धान्त ज्योतिष गणना के पञ्चांग द्वारा ही किया गया है। सिद्धान्त

ज्योतिष की गणना अहर्गण द्वारा मध्यम सूर्य चन्द्रादि ग्रहों में मन्दोच्च, शीघ्रोच्च संस्कार देकर ही की जाती है। अतएव भारतीय सनातन काल गणना सौर चान्द्र हैं। उसके लिए सूर्यादि वार का ज्ञान, चैत्रादि मास का ज्ञान और नक्षत्र मंडल के बारह विभाग का ज्ञान अत्यावश्यक है। बिना इसके सनातन काल गणना हो ही नहीं सकती। एको अश्वो वहति सप्तनामा (ऋ० सं० १।१६४।२) आदि अनेक मंत्रों में सात दिन का वर्णन है। मैत्रायणी उपनिषद् छठे प्रपाठक अंश १४ में ६ अंश वाली राशियों का वर्णन है। अन्नं वा अस्य सर्वस्य योनिः', कालश्चान्नस्य, सूर्यो योनिः कालस्य। तस्यैतद्रूपम्········ द्वादशात्मकं वत्सरम् एतस्याग्नेयमर्धमर्धं वारुणम्। मघाद्यं श्रविष्ठार्ध-माग्नेयम् क्रमेण, उत्क्रमेण सार्पाद्यं श्रविष्ठार्धान्तं सौम्यम् तत्रैकैकमा-त्मनो नवांशकम्।

इसमें बारह राशियों का एक वत्सर और प्रत्येक राशि नवांशक अर्थात् सवा दो नक्षत्र की कही गई है। श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण में भी राशियों का वर्णन है—

'ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ॥ ८ ॥
नक्षत्रे दिति दैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पता विन्दुना सह ॥ ९ ॥
(वा० का० १८)

अर्थात् शुक्ल नवमी को अदिति दैवत पुनर्वसु नक्षत्र में (जब स्वगृही होकर पाँच ग्रह उच्च के थे बृहस्पति और चन्द्रमा का योग था) कर्क लग्न में राम का जन्म हुआ। वेदांग ज्योतिष याजुष ज्योतिष श्लोक ११ के मासपति के विचार में तथा आजकल के पञ्चांगों तक में सिद्धान्तगणित अविच्छिन्न रूप से देखा जा सकता है। इसी तरह चैत्रादि मासों के नामों का तथा अयन, विषुव, षड्सीति, पर्व नाम से

सूर्य संक्रान्तियों का महाभारत संहिता में वर्णन है। ऋग्वेदादि के समान ही वार एवं संक्रान्तियाँ भी अनादि हैं।

जब पूर्वोक्त रीति से महाभारत और गीता की इतनी प्राचीनता सिद्ध होती है तो उसमें वर्णित रामायण, रामायण के निर्माता महर्षि बाल्मीकि तथा रामायण के पात्र उनकी अति प्राचीनता सुतरां सिद्ध है।

पुराणों के सन्दर्भ में

कहा जाता है कि पुराणों के अनुसार कृष्ण से लेकर चन्द्र गुप्त मौर्य तक १३८ राजाओं की पीढ़ियों का अनुमान लगा कर प्रत्येक का शासन २० वर्षों का माना जाय तो ३०८०, ई० पूर्व होता है। श्री गोपाल अय्यर ने महोपनन्द तक ३७, राज्यपीढ़ियों को मानते हुए प्रत्येक का शासन काल २२ वर्ष का मान कर महाभारत घटना को ११९३ ई० पूर्व निर्धारित किया है। पूर्वोक्त पद्धति के अनुसार यह स्पष्ट है कि १३८ पीढ़ी न होकर कुल ४० होती हैं।

वस्तुतः जहाँ परीक्ष्य ग्रन्थ के आधार पर काल निर्धारण में कठिनाई हो वहीं पर ऐसे अनुमानों से काम चलाना पड़ता है। पीढ़ियों के आधार पर भी सही काल निर्धारण शक्य नहीं है। क्योंकि सभी घटनाएँ और सभी व्यक्ति ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं होते हैं। किन्तु जिन महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के द्वारा समाज या राष्ट्र को धार्मिक आध्यात्मिक और सामाजिक अभ्युत्थान के लिये कुछ शिक्षा मिलती हो उन्हीं घटनाओं और व्यक्तियों का इतिहास में उल्लेख होता है। अन्यथा जिनका ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक काल ६ हजार वर्ष में ही समाप्त हो जाता है उनके अनुसार भी यदि संसार के एक वर्ष के इतिहास को एक पन्ने में ही लिखा जाय तो भी ६ हजार पन्ने का इतिहास होगा। फिर जिन भारतीयों की वर्तमान सृष्टि का कुछ कम

दो हजार वर्ष का इतिहास है। उनका इतिहास दो अरव पन्नों का होगा फिर उसे कौन कितने दिन में अध्ययन करेगा और उतने वड़े इतिहास का निष्कर्ष कितने दिन में निकालकर कव उससे सबक सीख कर उससे फायदा उठायेगा।

अतः सर्वज्ञ कल्प महर्षियों ने टेलीप्रिंटर के समाचारों, संवाद दाताओं के तारों के आधार पर नहीं, आँखों देखे के आधार पर भी नहीं, किन्तु योगजन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा के आधार पर समाज एवं राष्ट्र के धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक उत्थान के उपयोगी ज्ञानप्रद इतिहास का उल्लेख किया है। अन्यथा गडे मुर्दों को वरावर उखाड़ने जैसे पुरानी बातों को वार-वार दुहराना मात्र इतिहास का मुख्य विषय हो ही नहीं सकता है। अतएव अनादि, अपौरुषेय वेदादि शास्त्रों से अनुप्राणित राम और युधिष्ठिर जैसे विशिष्ट अवतारी पुरुषों एवं उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों एवं घटनाओं का प्रमाणिक उल्लेख किया हैं। रामायण महाभारत तथा पुराणों के राजाओं की सूची में भी मुख्य-मुख्य उल्लेख्य राजाओं का ही उल्लेख हुआ है, सबका नहीं। उनमें भी कुछ लोगों की आयु बहुत अधिक थी।

रामायण के अनुसार श्री रामचन्द्र जी ने ११०००, वर्ष तक राज्य किया। दशरथ जी का उससे भी अधिक काल तक राज करने का उल्लेख है। उनमें कई राजा कृत युग के, कई त्रेता के थे। युधिष्ठिर द्वापरान्त के राजा थे। मानवीय वर्ष के अनुसार कलि की आयु ४३२००० की है। उससे दुगुनी द्वापर, तिगुनी त्रेता तथा चौगुनी कृत युग की आयु है। चौदह मन्वन्तरों में वर्तमान् वैवस्वत मन्वन्तर का यह अठाइसवां कलियुग है। श्री राम का प्रादुर्भाव २४ वें त्रेता का है।

चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्रपुरःसरः।
राज्ञो दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः॥'

(हरिवंश १।१२१)

वैवस्वत मनु को हुए अब तक बारह करोड़ पाँच लाख तैंतीस हजार वर्षसे भी अधिक हुए। वर्तमान सृष्टि को हुए अब तक १ अरब ९५ करोड़ ५८ लाख २५ हजार से अधिक हुआ। ब्रह्मा के एक दिन में १४ मनु बीतते हैं जिसमें ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष होते हैं। १५ खरब, ५५ अरब २० करोड़ मानव वर्ण का उनका एक वर्ण होता है।

अब तक ब्रह्मा के ५० वर्ण बीत गये हैं। जिसमें ७ नील ७७ खरब, ६० अरब वर्ण बीत गये हैं। इस महान् काल में रामायण, महाभारत तथा पुराणों में वर्णित पीढ़ियाँ बहुत ही कम ठहरती हैं। अतः व्यासदेव ने उनमें से मुख्य-मुख्य राजाओं का वर्णन किया है। उसी वंश में होने वाले पूर्व-पूर्व मुख्य पुरुषों के पुत्रादि रूप में उत्तरोत्तर मुख्य पुरुषों का वर्णन किया है।

पुरातत्त्व-महाभारत रामायण

पुरातत्व के आधार पर भी काल निर्धारण आंशिक रूप से हो सकते हैं (जिसे भूरे चित्रित पात्र स्तर की उपलब्ध सामग्रियों से महाभारत कालीन सभ्यता से सम्बन्धित किया गया है, उनसे महाभारत की विकसित सभ्यता से मेल नहीं खाता। महाभारत में वर्णित अस्त्र शस्त्र पूर्ण विकसित सुसज्जित प्रणाली के द्योतक हैं। उत्खनन में प्राप्तसामग्रियाँ महाभारत में वर्णित सामग्रियों से मेल नहीं खातीं। अतएव वे सब महाभारत कालीन नहीं है।

कुछ लोगों का मत है कि महाभारत में वर्णित लौह अस्त्र शस्त्र का आविर्भाव ईसाके कुछ शताब्दी पूर्व हुआ तो महाभारत की घटना ईसा से हजारों वर्ण पूर्व कैसे सम्भव है ? यह कथन वैसे ही है जैसे वायुयान का विकास तो १९ शती में हुआ फिर रामायण में पुष्पक विमान का वर्णन कैसे हो सकता है ? वस्तुतः सृष्टि में अनेक बार ऐसे ह्रास-विकास होते रहते हैं जिन्हें झुठलाया नहीं जा सकता। अगस्त

१९२३ में थियोसोफिकल पाथ में हैनसन ने लिखा है कि उस तल्ले में सूई सिलाई, धागों के मरोड़, धागों के माप मिलते हैं जो आजकल के अच्छे से अच्छे बने जूतों के समान पक्के और सूक्ष्म हैं। इससे सिद्ध होता है कि ५० अरब वर्ष से मनुष्य जूता पहनता है और वह सुई, सूत, सिलाई, नपाई का ज्ञान प्राप्त कर चुका था। विगत ५३ वर्ष पहिले जोन० टी० रीड को नेवादा में एक पद चिन्ह और एक जूते का तल्ला मिला। उन्होंने अपने चट्टान विषयक भूगर्भ सम्बन्धी ज्ञान से उसे ५० लाख वर्ष पुराना बतलाया। जाहिर है कि उस समय मनुष्य सूई से सिल कर जूना पहनता था तो लौह का प्रादुर्भाव तो उससे किनने पहले हुआ होगा। कभी-कभी जंगली युग एवं सभ्यता युग की विरुद्ध वस्तुएँ एक स्थान में मिल जानी हैं। मुहनजोदड़ों और हड़प्पा के खंडहरों में जहाँ सभ्यता के चिह्न मिलते हैं वहीं पत्थर के शस्त्र जंगलीपन के चिह्न मिलते हैं।

रामायण

हरिवंश में चौबीसवें त्रेता में रामावतार लिखा हुआ है। वाल्मीकीय रामायण का माहात्म्य और उसके रचयिता का वर्णन महाभारत में मिलता है। राम, सीता तथा दशरथ के भी नाम का उल्लेख वेदों में है।

वाल्मीकि ने ब्रह्मा के आदेश पर समाधि द्वारा ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त कर राम, सीता, लक्ष्मण, भरत; शत्रुघ्न, दशरथ और कौशल्यादि की गुप्त प्रकट सभी घटनाओं का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करके वर्णन किया हैं। वाल्मीकि ने समुद्र नहीं देखा था यह वही कह सकता है जिसने वाल्मीकि का समुद्र वर्णन नहीं पढ़ा। उसके द्वारा ही किसी झील में पुल बाँधने को सेतुवन्ध और मध्य प्रदेश में लंका बतलाया जा सकता है। इसी तरह रत्न जटित पादुका और स्वर्ण मुद्रिका को प्रक्षिप्त कह सकता है।

राम की अँगूठी

सांकलिया आदि कुछ सज्जन यह भी कहते हैं कि भगवान् श्रीराम ने मुनि का वेष धारण करके जब राज्य की कोई सम्पत्ति न लेकर वन की यात्रा की तब फिर उनके पास अँगूठी कहाँ से आई ? और स्वर्णभूषित रत्नजटित पादुका कहाँ से आई ? अँगूठी तो भगवान् श्रीराम ने हनुमान् को सीतान्वेषण के लिए प्रस्थान के समय और रत्नजटित स्वर्णभूषित पादुका भरत को चित्रकूट से अयोध्या वापस आते समय दी थी। अतः इन अंशों को प्रक्षिप्त मानना चाहिए। दूसरी बात यह है कि धातुद्रावण (धातुओं के गलाने) का ज्ञान लोगों को बाद में हुआ। पहले तो लोग पत्थरों और हड्डियों के औजारों से लड़ते थे। लोहे का तीर बहुत बाद में बना। फिर उन पर नामोट्टङ्कन तो ईसा सन् के आस-पास ही लोगों ने जाना। अतः बाल्मीकीय रामायण में रामनामाङ्कित अङ्गुलीय का वर्णन और रत्नजटित स्वर्णभूषित पादुका का वर्णन पीछे मिलाया गया है। परन्तु वैसी शंका निर्मूल ही है क्योंकि दण्डकारण्य प्रस्थान के समय माता कौसल्या के पास जब उनकी अनुज्ञा प्राप्त करने भगवान् श्रीराम गये, तब माता ने राजकुमारों के योग्य आसन दिया। उस पर न बैठ कर केवल उसका स्पर्श करके कहा कि—मुझे दण्डकारण्य जाना है। इस आसन से अब क्या मतलब ? मेरे लिए तो विष्टर आसन इस समय चाहिए। चौदह वर्ष निर्जन वन में मुनियों के समान (मसाला आदि डालकर बनाया हुआ नहीं) मांस, कन्दमूल फल से जीवनयात्रा चलाते हुए रहना है।

'गमिष्ये दण्डकारण्यं किमनेनासनेन मे।
विष्टरासनयोग्यो हि कालोऽयं मामुपस्थितः॥ २८॥

'चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने।
कन्दमूलफलैर्जीवन् हित्वामुनिवदामिषम्॥ २९॥'
(अयो० का० २०)

यहाँ प्रश्न उठता है कि वे वन में गृहस्थाश्रम में गये हैं अथवा वानप्रस्थ आश्रम में ? उत्तर स्पष्ट है—अयोध्या में गृहस्थाश्रम में हैं। वहाँ से उनका निर्वासन हो रहा है। आश्रमान्तर प्राप्ति की कोई बात नहीं। गृहस्थ ही रहकर वे वनवास में गये हैं। राज्य की सम्पत्ति उन्होंने छुई नहीं। फिर भी भगवान् श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा है कि—महाराज जनक के यज्ञ में महात्मा वरुण ने रौद्रदर्शन (देखने से ही हृदय कँपा देने वाले) दो धनुष, दो दिव्य अभेद्य कवच तथा सदा बाणों से भरे रहने वाले दो तरकस और सूर्य के समान चमकीले दो हेम (स्वर्ण) परिष्कृत तलवार ये सब हमको दहेज में दिये थे। आचार्य के घर से उन्हें लेकर तुम शीघ्र आओ।

'ये च राज्ञो ददौ दिव्ये महात्मा वरुणः स्वयम्।
जनकस्य महायज्ञे धनुषी रौद्रदर्शने॥ २९॥
अभेद्ये कवचे दिव्ये तूणीचाक्षय्यसायकौ।
आदित्यविमलाभौ द्वौ खड्गौ हेमपरिष्कृतौ॥ ३०॥'
(अयो० का० ३१)

जिस धनुष को भगवान् राम ने तोड़ा वह धनुष भी वरुण ने महाराज जनक के पूर्वजों को दिया था। उसकी चर्चा जगदम्बा सीता ने माता अनसूया के सामने तथा महाराज जनक ने ब्रह्मर्षि विश्वामित्र और राम लक्ष्मण के समक्ष किया है और दण्डकारण्य में महर्षि अगस्त्य ने स्वर्ण और हीरा जटित विश्वकर्मा द्वारा निर्मित विष्णुदैवत

दिव्य अमोघ धनुष ब्रह्मा जी ने दिया था। सूर्य के समान तेजस्वी दिव्य वाण और जाज्वाल्यमान वाणों से सदा भरे रहने वाले दो तूणीर तथा सुवर्ण की म्यान और मुट्ठी वाली तलवार भी दी है।

'इदं दिव्यं महच्चापं हेमवज्रविभूषितम्।
वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ ३२ ॥
अमोघः सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः।
दत्तो मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षय्यसायकौ ॥ ३३ ॥
सम्पूर्णौ निशितैर्वाणैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः।
'महारजतकोशोऽयमसिर्हेमविभूषितः ॥ ३४ ॥'

(अरण्यकाण्ड १२)

अर्थात् राजकुमार की स्वयं व्यक्तिगत सम्पत्ति बहुत थी। भगवान् श्री राम वह भी चाहते तो ले जा सकते थे क्योंकि वह राज्य की नहीं थी। जब उन्होंने दान किया तो उसे ले जाने में कोई बाधा नहीं थी। उनके मामा के यहाँ से जो शत्रुञ्जय नामक हाथी उन्हें मिला था उसका दान उन्हों ने वशिष्ठ जी के पुत्र सुयज्ञ को एक हजार रामनामाङ्कित निष्क (स्वर्णमुद्रा) दक्षिणा के साथ दे दिया। ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ अगस्त्य और विश्वामित्र को बुला कर उनका पूजन कर दान के लिए ऐसे रत्नों की वर्षा की जैसे खेत मे मेघ जल की वर्षा करता है। वाल्मीकि रामायण में बहुत प्रकार से दान का वर्णन किया गया है। भगवान् राम अपनी अपने नाम वाली अँगूठी अपने साथ ले गये थे। इन्द्र के हाथ में जैसे वज्र है, विष्णु के हाथ में जैसे चक्र है, और भगवान् त्रिनेत्रधारी शङ्कर के हाथ में जैसे त्रिशूल है, वैसे ही द्विज के हाथ में पवित्री है।

'यथा वज्रं सुरेन्द्रस्य यथा चक्रं हरेस्तथा।
त्रिशूलं च त्रिनेत्रस्य तथा विप्रपवित्रकम् ॥'

यह पवित्री सुवर्ण की बहुत पवित्र मानी गयी है।

'अन्यान्यपि पवित्राणि कुशदूर्वामयानि च।
हेमालयपवित्रस्य कालां नार्हन्ति षोडशीम् ॥'

यह वचन हेमाद्रि से उद्धृत है। अर्थात् कुश दूर्वा की अन्य पविञियाँ सुवर्ण पवित्री (अंगूठी) की सोलहवीं कला (पसँहा) के बराबर भी नहीं होतीं। यह सुवर्ण पवित्री अनामिका के मूल में पहिननी चाहिए।

अत्रि का वचन हैं—

'अनामिकामूलदेशे पवित्रं धारयेद् द्विजः।'

गुरु द्रोण के हाथ में भी यही पवित्री थी जिसे सूखे कुएँ में डालकर उन्होंने गुल्ली के साथ निकाल कर कौरव पाण्डवों को चकित कर दिया था।

रही पादुका की बात उसे तो भरत जी अपने साथ अभिषेक सामग्री के साथ ले गये थे उसी में वह गयी थी। जब भगवान् श्री राम ने वन से राज्य के लिए अयोध्या लौटना कथमपि स्वकार नहीं किया तब भरत जी के मन में वह आशंका घर कर गयी जिसकी सम्भावना कौसल्या ने की थी। जैसे सिंह कभी दूसरे द्वारा आनीत मांस खाना नहीं चाहता इसी प्रकार परभुक्त राज्य को राम स्वीकार नहीं करेंगे।

'न परेणाहृतं भक्ष्यं व्याघ्रः खादितुगच्छति।
एवमेव नरव्याघ्रः परलीढं न मन्यते ॥'

(अयो० ६१)

अतः भरत जी ने स्वर्णभूषित पादुका भगवान् श्री राम के सम्मुख रखकर कहा—"हे भगवान् ! आप अपने दोनों चरणों को इन दोनों पादुकाओं पर रख दीजिए, ये ही राज्यसिंहासनस्थ होकर सम्पूर्ण जनों का योग-क्षेम निर्वाह करेंगी।"

'अधिरोहार्यपादाभ्यां पादुके हेमभूषिते।
एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः॥'
(अयो० ११२)

भरत जी ने राज्य को भगवान् श्री राम का धरोहर माना।

'भरतः शिरसा कृत्वा संन्यासं पादुके ततः॥ १५॥
(अयो० ११५)

यदि भगवान् रामचन्द्र के पास स्वर्णभूषित पादुका होती तो भरत जी उनसे यह नहीं कहते कि इस पर 'अधिरोह' चढ़ जाइये।

एतरेय ब्राह्मण में सौवर्ण पलङ्ग का वर्णन है, जिस पर बैठ कर होता सम्राट् की स्तुति करता है। सुवर्ण द्रावण का ज्ञान यदि उस समय न होता तो सुवर्ण का तार या शय्या कैसे बनती ? इसी प्रकार नामांकन की बात है। मुद्राराक्षस नाटक का आधार ही राक्षस के नाम वाली मुद्रा (अंगूठी) है। अभिज्ञान शाकुन्तल में महाकवि कालिदास ने भी दुष्यन्त के नाम वाली अंगूठी को ही प्रत्यभिज्ञा (पहचान का साधन) बताया है। भगवान श्री राम ने हनुमान जी को अपने नाम से अंकित अंगूठी जगज्जननी सीता के पहचान के लिए दी।

'ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम्।
अंगुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परन्तपः॥ १२॥'
(किष्किन्धा० ४४)

हनुमान् जी ने जगज्जननी सीता से कहा कि "हे देवी ! मैं रामदूत वानर हूँ। देखो राम नाम से अंकित यह अँगूठी मैं लाया हूँ।

'वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।
रामनामाङ्कितं चेदं पश्यदेव्यंगुलीयकम् ॥ २ ॥'
(सुन्दर० ३६)

भरत जी को भी हनुमान् जी ने सुनाया कि मैंने राम नाम वाली अंगूठी सीता के अभिज्ञान के लिये दी है।

अभिज्ञानं मया दत्तं रामनामांगुलीयकम् ॥ ४५ ॥'
(युद्ध काण्ड १२६)

इसी तरह भगवान् राम के नामों वाले वाणों की चर्चा भी रामायण में है।

इसी प्रकार सीता रावण के वश में कैसे हो इसका विचार करते हुए महोदर ने रावण से कहा कि आप सीता को प्राप्त करके उसके भोग मे क्यों विलम्ब कर रहे हैं ? आप जब चाहें तब सीता आपके वश में हो सकती है। मैंने कुछ उपाय सोचा है यदि आपको जँचे तो उसके अनुसार आप कार्य करें। हम द्विजिह्व संह्लादी कुम्भकर्ण और वितर्दन ये पाँच महावीर राम का वध करने जा रहे हैं; इसकी घोषणा करा दीजिए। हम लोग युद्ध में जाकर यदि शत्रु विजय कर लेते हैं तो दूसरे उपाय की आवश्यकता नहीं। यदि शत्रु मरा नहीं और हम लोग युद्ध में बचे रहे तो युद्ध से वापस आ जायेंगे। हम लोगों का शरीर रामनामांकित वाणों से क्षत विक्षत होगा, रुधिर शरीर से निकल रहा होगा। हम लोग मिथ्या ही कहेंगे कि हम लोगों ने राम और लक्ष्मण को खा लिया है और

आपके चरणों में प्रणाम करेंगे। आप वनावटी प्रसन्नता दिखाते हुए हम लोगों की इच्छा के अनुसार इनाम दें। एकान्त में सीता के पास जाकर आप उसे अनेक प्रकार की सान्त्वना दें। धनधान्य रत्नों का लोभ दें तब सीता आपके वश में हो जायगी।

'लब्ध्वा पुरस्ताद् वैदेहीं किमर्थं त्वं विलम्बसे।
यदीच्छसि तदा सीता वशगा ते भविष्यति ॥ २० ॥

दृष्टः कश्चिदुपायो मे सीतोपस्थानकारकः।
रुचितश्चेत्स्वया बुद्ध्वा राक्षसेन्द्र ततः शृण ॥ २१ ॥

अहं द्विजिह्वः संह्लादी कुम्भकर्णो वितर्दनः।
पञ्च रामवधायैते निर्यान्तीत्यवघोषय ॥ २२ ॥

ततो गत्वा वयं युद्धं दास्यामस्तस्य यत्नतः।
नेष्यामो यदि ते शत्रून् नोपायैः कार्यमस्ति नः ॥ २३ ॥

अथ जीवति नः शत्रुर्वयं च कृतसंयुगाः।
ततः समभिपत्स्यामो मनसा यत्समीक्षितम् ॥ २४ ॥

वयं युद्धादिहेष्यामो रुधिरेण समुक्षिताः।
बिदार्यस्वतनुं वाणै रामनामाङ्कितैः शरैः ॥ २५ ॥

भक्षितो राघवोऽस्माभिर्लक्ष्मणश्चेति वादिनः।
ततः पादौ ग्रहीष्यामः त्वं नः कामं प्रपूरय ॥ २५ ॥

भक्षितः ससुहृद्रामो राक्षसैरिति विश्रुते।
अकामा त्वद्वशं सीता नष्टनाथा भविष्यति ॥ २६ ॥

(युद्धकाण्ड सर्ग ६८)

इसी प्रकार डाक्टर साकलिया एवं उनके जैसे कुछ नवीन पुरातत्वविदों ने रामायण की कतिपय घटनाओं तथा विशिष्ट स्थानों की प्रामाणिकता तथा उनके सम्बन्ध में नये सूत्र के अन्वेषण के वाद विवाद उठाया है।

डाक्टर साकलिया ने वाल्मीकीय रामायण को पूर्ण प्रामाणिक ग्रन्थ माना है। वे उसे महाकाव्य मानते हैं। परन्तु उसमें वर्णित सेतुबन्ध, हनुमान द्वारा समुद्र पार गमन, अंगूठी प्रसंग, लंका की स्थिति तथा कुछ ऐसी ही घटनाओं को उन्होंने अप्रामाणिक तथा काल्पनिक माना है। इस सम्बन्ध में उनके तर्क अत्यन्त आधारहीन तथा परस्पर विरोधी ज्ञात होते हैं।

यह नियम है कि जिन वस्तुओं का भाव जिस प्रमाण से विदित होता है उनका अभाव भी उसी प्रमाण से विदित होता है। जिस प्रकार भूतल में घट का भाव आलोकादि सहकारी सहकृत मन-संयुक्त निर्दोष नेत्र से ही विदित होता है, उसी प्रकार घटाभाव भी उसी प्रमाण से विदित होता है। यह स्पष्ट है कि जिसके भाव का ज्ञान कर्णेन्द्रिय से होता है, उसके अभाव का ज्ञान नेत्रेन्द्रिय से नहीं हो सकता। शब्द का ज्ञान कर्णेन्द्रिय से होता है, शब्द के अभाव ज्ञान के लिए भी कर्णेन्द्रिय की ही आवश्यकता होती है किसी अन्य प्रमाण की नहीं।

प्रकृत में राम, सीता, लक्ष्मण, अयोध्या, लंका आदि का ज्ञान आधुनिक प्रत्यक्षानुमान तथा आधुनिक इतिहास से नहीं हो सकता। रामायण एवं पुराणों के अनुसार राम का प्रादुर्भाव करोड़ों वर्ष पूर्व चौबीसवें त्रेता में हुआ है। आधुनिक ऐतिहासिक युग एवं प्रागैतिहासिक काल की सम्पूर्ण अवधि विद्वानों ने छः हजार वर्ष के भीतर ही मानी है। ऐसी स्थिति में राम के चरित्रों के सम्बन्ध में वर्तमान इतिहास

का चंचु-प्रवेश हो ही नहीं सकता। उस सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी अब वाल्मकि के रामायण से ही प्राप्त हो सकती है।

वाल्मीकि रामायण का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि रामायण का निर्माण कुछ संवाददाताओं या टेलीप्रिन्टरों से भेजे गये समाचारों के आधार पर नहीं हुआ। उसका निर्माण महर्षि वाल्मीकि ने समाधि-जनित ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा अतीत अनागत, वर्तमान, स्थूल, सूक्ष्म, सन्निकृष्ट, विप्रकृष्ट सभी वस्तुओं का साक्षात्कार करके राम, लक्ष्मण, सीता आदि के हँसित, भासित, इंगित, चेष्टित सभी व्यापारों का पूर्ण रूप से साक्षात्कार किया। महर्षि वाल्मीकि अलौकिक मुनि थे। वे लौकिक गति और दिव्य गति द्वारा भी सब जगह आ जाकर सब वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर सकते थे। अतः सेतुबन्धन और समुद्रलंघन आदिकों के सम्बन्ध में रामायण के वर्णन की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इनके विषय में वाल्मीकि रामायण ही सबसे बड़ा प्रमाण माना जायेगा।

सेतुबन्धन कल्पना नहीं

रामायण में वर्णित रामेश्वर की स्थापना वर्तमान इतिहास से भी प्रमाणित होती है। सहस्राब्दियों से भारत के कोने-कोने से लोग रामेश्वर का दर्शन करने जाते हैं। गंगोत्री से जल लेकर अति प्राचीन काल से धर्मप्राण जनता वहाँ चढ़ाने जाती है। धर्मशास्त्र और वेदान्तशास्त्र की मान्यतानुसार सेतुबन्ध रामेश्वर के दर्शन से ब्रह्महत्याओं के पाप दूर होते हैं। पुराणों में इन बातों का विशद वर्णन है। कूर्म पुराण पूर्व भाग के बीसवें अध्याय में आये इन श्लोकों से रामेश्वर की महत्ता तथा प्राचीनता स्पष्ट होती है—

"ये त्वया स्थापितं लिंगं द्रक्ष्यन्तीह द्विजातयः ।
महापातकसंयुक्तास्तेषां पापं विनश्यतु ।। ४ ।।
अन्यानि चैव पापानि स्नातस्यात्र महोदधौ ।
दर्शनादेव लिङ्गस्य नाशं यान्ति न संशयः ।। २० ।।

यावत्स्थास्यन्ति गिरयो यावदेषा च मेदिनी ।
यावत्सेतुश्च तावच्च स्थास्याम्यत्र तिरोहितः ।। २१ ।।"

इसी प्रकार के अन्य वचन स्कन्द पुराण, तथा अन्य पुराणों में भी मिलते हैं। इन वचनों तथा मान्य ग्रन्थों के प्रमाणों के अतिरिक्त रामेश्वर नाम ही रामेश्वर मूर्ति और मन्दिर का भगवान् राम के साथ असाधारण सम्बन्ध स्थापित करता है। अतः सेतुबन्ध रामेश्वर की घटना वाल्मीकि रामायण द्वारा वर्णित रामेश्वर से भिन्न वस्तु नहीं हो सकती।

सेतु निर्माण की घटना मात्र कल्पना नहीं है। वाल्मीकि रामायण में सेतु निर्माण की प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन किया गया है। उसका प्रारम्भ, समाप्ति, नाप जोख सब पर इस रामायण में प्रकाश डाला गया है। वाल्मीकि रामायण के युद्ध काण्ड के २२ वें सर्ग के ५० से ७२ वें श्लोकों तक प्रतिदिन कितना निर्माण हुआ, कितने दिन में बनकर तैयार हुआ इसका ब्योरेवार वर्णन किया गया है। प्रथम दिन १४ योजन, दूसरे दिन २०, तीसरे दिन २१, चौथे दिन २२ एवं पाँचवें दिन २३ योजन के अनुपात से पाँच दिनों में सेतु बनकर पूर्ण तैयार हुआ था। इसकी लम्बाई १०० योजन तथा चौड़ाई १० योजन थी। आधुनिक युग में विभिन्न देशों में निर्मित अत्यन्त विशाल सेतुओं की उपस्थिति उक्त सेतुबन्धन की घटना को वास्तविक मानने को बाध्य करती है।

समुद्र वर्णन तथा दक्षिण भारत की स्थिति

वाल्मीकि रामायण में समुद्र, समुद्र की लहरें; जल-जन्तुओं, रत्नों, तटीय वस्तुओं, चन्द्रमा के कारण आने वाले समुद्री ज्वार भाटों तथा अन्य समुद्र से सम्वद्ध वस्तुओं का जितना सजीव वर्णन किया गया है, उतना जीवन्त वर्णन किसी भी ऐसे व्यक्ति के द्वारा सम्भव नहीं है जिसने कभी समुद्र देखा ही न हो। उदाहरण के लिए सुन्दर काण्ड के प्रथम सर्ग में हनुमान जी द्वारा समुद्र गमन के समय का वर्णन प्रस्तुत है।

'समुत्पतति वेगात्तु वेगात्ते नगरोहिणः।
संहृत्य विटपान् सर्वान् समुत्पेतुः समन्ततः ।। १।४५ ।।'

उन वृक्षों से नाना वर्ण के पुष्पों के समुद्र में गिरने से ऐसा लग रहा था मानो आकाश में सुन्दर-सुन्दर रमणीय तारायें एक साथ उदय हो गई हों।

'तस्य वेगसमुद्भतैः पुष्पैस्तोयमदृश्यत।
ताराभिरभिरामाभिरुदिताभिरिवाम्बरम् ।। १।५६ ।।'

आकाश मार्ग में वायु में तैरते हुए हनुमान जी के दोनों बाहुओं के मध्य शरीर से टकराता हुआ वायु मेघ के समान गर्ज रहा था।

'तस्य वानरसिंहस्य प्लवमानस्य सागरम्।
कक्षान्तरगतो वायुर्जीमूत इव गर्जति ।। १।६५ ।।'

समुद्र के जिस जिस अंश से हनुमान जी निकलते थे वहाँ-वहाँ समुद्र में तुफान आ जाता था।

'यं यं देशं समुद्रस्य जगाम स महाकपिः।
स तु तस्याङ्गवेगेन सोन्माद इव लक्ष्यते ॥ १।६६ ॥

महान् वेग वाले हनुमान महा समुद्र में उठी हुई मेरु और मन्दर के तुल्य बड़ी-बड़ी तरङ्गों को गिनते हुए चले जा रहे थे।

मेरुमन्दरसंकाशानुद्गतान् स महार्णवे।
अत्यक्रामन्महावेगस्तरङ्गान् गणयन्निव ॥ १।७३ ॥

हनुमान जी के वेग जन्य वायु से समुद्र का जल आकाश में चला जाता था। नीचे तिमि, नक्र, बड़ी-बड़ी मछलियाँ बड़े-बड़े कच्छप ऐसे दिखाई देते थे जैसे कपड़ा हट जाने पर देह दिखाई देता है।

'तिमिनक्रझषाः कूर्मा दृश्यन्ते विवृतास्तदा।
वस्त्रापकर्षणेनैव शरीराणि शरीरिणाम् ॥ १।७५ ॥

समुद्र में रहने वाले सर्पों ने आकाश मार्ग पर हवा में तैरते हुए हनुमान जी को देख कर गरुड़ समझ लिया।

'क्रममाणं समीक्ष्याथ भुजंगाः सागरं गमाः।
व्योम्नि तं कपिशार्दूलं सुपर्णमिव मेनिरे ॥ १।७६ ॥'

महाबली कपि श्रेष्ठ हनुमान समुद्र में जिस मार्ग से निकलते थे उधर-उधर ऐसा लगता मानो जल के पनाले वह रहे हों।

'येनासौ याति बलवान् वेगेन कपिकुञ्जरः।
तेन मार्गेण सहसा द्रोणीकृत इवार्णवः ॥ १।८० ॥'

वाल्मीकि रामायण जैसे प्रामाणिक ग्रन्थ में वर्णित वस्तु के विषय में 'अमुक स्थान पर रही होगी' की कल्पना निस्सार है। उस

रामायण में तो वर्णित वस्तुओं, घटनाओं एवं स्थानों के विषय में निश्चितता है। परन्तु आधुनिक लोगों द्वारा तथा कथित अन्वेषणों के विषय में तो अनिश्चय की स्थिति बनी ही हुई है। ऐसी स्थिति में निश्चित प्रमाण को छोड़कर अप्रामाणिकता की ओर दौड़ना अन्धकारयुक्त मकान में वस्तुओं को खोजने के लिए प्रयास करने के समान है।

महर्षि वाल्मीकि ने भगवान् राम के समुद्र तक पहुँचने के विभिन्न मार्गों का विशद वर्णन किया है। आज भी उसी मार्ग से दक्षिण भारत की तीर्थयात्रा हो जाया करती है। किष्किन्धा में बालि को मारकर राम ने चौमासा किया था। वह किष्किन्धा दक्षिण भारत में आज किष्किन्धा नाम से ही प्रसिद्ध है। बाल्मीकि रामायण में वर्णित किष्किन्धा की स्थिति को छोड़कर बिना किसी प्रमाण के बेलारी या अन्य किसी स्थान पर उस स्थान की कल्पना वास्तविकता को अस्वीकार करना है। नासिक पञ्चवटी आदि स्थानों के विषय में भी शंकायें उठायी गई हैं।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि नासिक का सम्बन्ध रामायण की महत्त्वपूर्ण घटना शूर्पणखा की नासिका छेदन से है। पञ्चवटी भी वहीं है। रामायण में दोनों स्थानों का आस पास होना प्रमाणित होता है। आधुनिक काल में भी पञ्चवटी और नासिक एक ही स्थान पर हैं। इन स्थानों का वाल्मीकि रामायण के वर्णन से सादृश्य सम्बन्ध प्रतीत होता है। महाकवि ने रामायण में लगभग दो सौ साठ स्थानों का वर्णन किया है। इनमें से अधिकांश स्थान आज भी दक्षिण भारत में ही है। गोदावरी, कृष्णा, वरदा आदि नदियाँ, आन्ध्र, चोल, पाण्ड्य, केरल आदि स्थान दक्षिण भारत में ज्यों के त्यों विद्यमान हैं।

समुद्र सम्बन्धी पर्वतों का वर्णन भी स्वाभाविव ढंग से हुआ है। वे पर्वत आज भी विभिन्न नामों से विभिन्न रूपों में अवस्थित हैं। वाल्मीकि रामायण में लंका जाते समय हनुमान का महेन्द्र पर्वत किष्किन्धा (काण्ड ६७ सर्ग श्लोक ३६) तथा लौटते समय अरिष्ट पर्वत (सुन्दर काण्ड ५६ सर्ग श्लोक २६) पर चढ़ना बताया गया है।

इसी तरह सुवेल,सह्य, मलय इत्यादि पर्वतों का भी वर्णन किया गया है। इन सब वाल्मीकि रामायण में वर्णित एवं आधुनिक जगत् में प्रसिद्ध वस्तुओं एवं स्थानों में वाल्मीकि रामायण में वर्णित अर्थ ही प्रमाणित होता है। अतः वह कहना तथ्यों से विपरीत है कि महर्षि वाल्मीकि को दक्षिण भारत की भौगोलिक स्थिति एवं उसके रीति रिवाजों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी।

जहाँ तक दक्षिण में शव गाड़ने की प्रथा का प्रश्न है, आधुनिक इतिहास के आधार पर उसे प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। आधुनिक इतिहास मात्र ६ हजार वर्ष पुराना हैं जबकि वाल्मीकि रामायण में वर्णित वालि के शव दाह की घटना करोड़ों वर्ष पुरानी घटित घटना है। रामायण की संस्कृति, सर्वथा वैदिक संस्कृति है। राम, रावण, वालि इत्यादि वैदिक संस्कृति के व्यक्ति थे। हनुमान जी भारतीय संस्कृति के अध्येता थे। वैदिक संस्कृति में 'भस्मान्तम् शरीरम्' इत्यादि वेद मंत्र के अनुसार प्राचीन शवदाह का ही समर्थन किया गया है। अतः वालि एवं रावण के शवदाह का आदेश देना वैदिक संस्कृति के अनुसार सर्वथा उपयुक्त था। शव को गाड़ने की कल्पना कथंचित हो भी तो वह मध्यकाल की बात हो सकती है। इसको दक्षिण भारत का शाश्वतिक धर्म नहीं माना जा सकता।

उधर भारत में भी साधु, संन्यासी, संत, महात्मा इत्यादिकों को जलाया नहीं जाता, उनकी समाधि वनती है, छोटे एवं असंस्कृत वालकों के शव के साथ भी यही होता है। कहीं-कहीं प्लेग इत्यादि की वीमारी में मरे वयस्क पुरुषों के शवों को भी गाड़ा ही जाता है, उन्हें जलाया नहीं जाता हैं। हमारे यहाँ शवों के संवंध में सर्वत्र दहन, खनन एवं प्लावन की परम्परा हैं। अतः इनमें से किसी एक को किसी भाग विशेष की परम्परा नहीं माना जा सकता। जिस प्रकार किसी मुस्लिम वहुल प्रदेश में कब्रों को देख कर यह निर्विवाद निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि यहाँ केवल कब्र ही वनती रही हैं, उसी प्रकार किसी स्थान विशेष पर शव गाड़ने की प्रक्रिया को लेकर यह नहीं कहा जा सकता कि वहाँ पर सदा शव गाड़े ही जाते रहे हैं। यह वात तात्कालिक ऐतिहासिक हो सकती है पर शाश्वतिक ऐतिहासिक नहीं है।

जहाँ तक वाल्मीकि रामायण में वर्णित स्थानों का प्रश्न है; वह अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। वानरराज सुग्रीव ने वन्दरों द्वारा सीता के अन्वेषण के लिए जिन स्थानों का वर्णन किया है वह अत्यन्त सजीव तथा किसी भी अन्वेषण करने वाले के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री सिद्ध हो सकती है। प्रारम्भ में जो जो घटनाएँ जिन जिन स्थानों पर घटित हुई थीं, लंका विजय के पश्चात् लौटते भगवान् राम ने भगवती सीता से उन सभी स्थानों तथा घटनाओं का वर्णनकिया है।

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ॥ २२ ॥
एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ॥ २० ॥
सेतुवन्ध इतिख्यातं त्रैलक्येन च पूजितम्।
एतत्पवित्रं परमं महापातकनाशनम् ॥ २१ ॥
एष सेतुर्मया वद्धः सागरे लवणार्णवे ॥ १७ ॥

कैलाश शिखराकारे त्रिकूटशखरे स्थिताम् ।
लंकामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा ।। ३ ।।
यत्र त्वं राक्षसेन्द्रेण रावणेन हृता वलात् ।। ४५ ।।
एषा गोदावरीरम्या प्रसन्नसलिला शुभा ।। ४६ ।।

(युद्ध काण्ड सर्ग १२३)

इसी तरह हिरण्यनाभ पर्वत १८, किष्किन्धा २२, ऋष्यमूक ३८, पम्पा ४०, पर्णशाला आश्रम ४२, ४४, शवरी मिलन स्थल ४१, अगस्त्य एवं शरभंग मुनियों के आश्रम ४६, चित्रकूट ४९, भरद्वाज आश्रम ५१, शृङ्गवेरपुर ५२, इत्यादि स्थानों का वर्णन भगवान् राम ने किया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण में वर्णित स्थान पूर्ण प्रामाणिक हैं। अब भी उन स्थानों की स्थिति तथा तीर्थ की दृष्टि से उनके महत्व पर किसी भी मान्य विद्वान् ने अपना मतभेद नहीं व्यक्त किया है।

डाक्टर साकलिया ने वाल्मीकि रामायण को पूर्ण प्रामाणिक माना है फिर उसी ग्रंथ के किसी अंश को क्यों अप्रामाणिक माना जाय यह तर्क की दृष्टि से समझ में नहीं आता। ऐसा करना किसी मुर्गी के आधे अंग को पकड़ कर खा जाने तथा आधे अंग को अंडा देने के लिए रख छोड़ने की घटना के समान है।

लंका की स्थिति

ऊपर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि रामायण में वर्णित स्थानों के लिए वाल्मीकि रामायण ही सबसे बड़ा प्रामाणिक ग्रन्थ है। इस रामायण के अनुसार लंका समुद्र से सौ योजन दूर थी। इन लोगों

द्वारा अभी तो पूर्वी मध्य प्रदेश, दक्षिणी विहार, पश्चिमी बंगाल एवं छोटा नागपुर के आस-पास लंका की स्थिति का निर्धारण करना है। उसके लिए अभी कोई प्रमाण भी नहीं है। आज भी लंका नाम से ही जब प्रसिद्ध द्वीप है तब फिर 'लक्का' को 'लंका' कहा होगा' यह कहने की आवश्यकता ही क्या है। यह नहीं कहा जा सकता कि लंका नाम की कोई चीज नहीं थी। वर्तमान श्री श्री लंका भी हमारे मत में रावण की लंका नहीं है। इस लंका का दूसरा नाम सिलोन भी है। ग्रन्थों में इस सिंघलद्वीप को रावण की लंका से विभिन्न बतलाया गया है।

भारतीय पौराणिक भूगोल के अनुसार आज की श्री लंका महाभारत का सिंघल द्वीप ही है। वास्तविकता यह है कि वाल्मीकि रामायण में वर्णित रावण की लका सर्व साधारण के लिए आज लुप्त हो गयी है। वहाँ दीर्घजीवी लोग रहते हैं। वे सामान्य व्यक्ति द्वारा नहीं देखे जा सकते। आधुनिक भूगोल वेत्ता भी यह मानते हैं कि सहस्राब्दियों में भूगोल में पर्याप्त परिवर्तन हो जाया करता है। यह मान्यता वहुसम्मत है कि जहाँ आज हिमालय है वहाँ पहले समुद्र था। स्वयं डाक्टर साकलिया ने यह माना है कि कुछ टीले ऐसे रहे होंगे जो इस समय आस्ट्रेलिया की ओर वढ़ गये होंगे। अतः रावण की लंका आध्यात्मिक एवं भौगोलिक दोनों कारणों से ही लुप्त हो गयी है। लंका को मध्य प्रदेश अथवा इधर उधर खोजना एक व्यर्थ का प्रयास है। वाल्मीकि रामायण की कतिपय घटनाओं को अप्रामाणिक मानने के लिए कुछ भी ठोस तर्क प्रस्तुत नहीं किये गये हैं।

जहाँ तक रावण की जाति एवं संस्कृति का सम्बन्ध है, वाल्मीकि रामायण के अनुसार वह वैदिक संस्कृति में दीक्षित कर्मनिष्ठ ब्राह्मण

था। वह परम तपस्वी पुलस्त्य का पौत्र तथा विश्वश्रवा मुनि का पुत्र था! आज भी भारत में पुलस्त्य गाँव प्रचलित है। इन प्रमाणों के रहते हुए भी उसे दूसरी जाति का व्यक्ति मानने की निराधार कल्पना करना सर्वथा अनुचित है।

यह सही है कि वाल्मीकि रामायण की कथायें युगों से गायी जाती रही हैं। ऐमी स्थिति में यदि उन कथाओं में प्रमाण विरुद्ध अंश आ जाय तो उसमें कुछ कल्पना का अंश आ सकता है। पर इन कथाओं में ऐसी कोई प्रमाणविरुद्ध बात नहीं पायी गयी है। इसके विपरीत युग से प्रचलित इन कथाओं में आश्चर्यजनक रूप से एक-रूपता बनी हुई है। यह तथ्य वाल्मीकि रामायण की प्रामाणिकता के लिये सबसे बड़ा आधार है।

हमारे यहाँ वेदों की आचार्य परम्परा मानी जाती है। गुरु-शिष्य सम्प्रदाय परम्परा से जैसे वेदों की रक्षा होती रही है, वैसे ही गुरु-शिष्य परम्परा से ही रामायण तथा पुराण की भी रक्षा होती रही है। इसी लिए रामायण में यदि कोई नयी चीज प्रविष्ट हुई तो उसे रामायण का प्रसिद्ध अंश न मानकर क्षेपक की संज्ञा दे दी गयी। वाल्मीकि रामायण के टीकाकारों ने तत्तत्क्षेपकों को हेतु न मानने का यही आधार बताया कि 'यह सम्प्रदाय प्राप्त व्याख्या नहीं है, अतः क्षेपक प्रमाण नहीं माने जा सकते। बस; इसी सम्प्रदाय विशेष के कारण ही वाल्मीक रामायण के मौलिक रूप की रक्षा होती रही है। अतः यह कहना ठीक नहीं है कि वाल्मीकि रामायण की कथाओं में कालान्तर में व्यापक काट छाँट किया गया। रामायण में महाभारत की चर्चा नहीं है। इधर काव्यों में तथा कालिदास, अश्वघोष प्रभृति कवियों ने भी रामायण की चर्चा की है। वौद्ध जातकों तथा जैन परचयों में रामायण का वर्णन है। इस लिए इनके आधार पर राम

कथाओं के भिन्न रूप बने भी हैं पर वाल्मीकि रामायण में भी इसकी खूब चर्चा है।

अनेक विदेशी विद्वानों ने भी राम कथा के सम्बन्ध में वाल्मीकि रामायण को ही सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रन्थ माना है। भारतीय संस्कृति का संदेशवाहक यह महान् ग्रन्थ राम-कथा सागर में युगों से भारतीयों को गोता लगा कर आज भी प्रत्येक भारतीय को उसमें गोता लगा कर अपने जीवन को मानवता के उदात्त आदर्शों के अनुसार जीने की पवित्र प्रेरणा दे रहा है। ऐसे प्रामाणिक ग्रन्थ को छोड़ कर निराधार कल्पना के सहारे नयी खोजों का दावा करना बौद्धिक स्तर से नीचे उतरने की बात है।

आधुनिक लोग वाल्मीकि रामायण के अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर एवं लंका इन पाँच काण्डों को प्रामाणिक मानते हैं तो वाल्मीकि रामायण में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सर्वत्र ही राम को विष्णु का अवतार माना गया है। अतः राम को गुप्त काल में विष्णु का अवतार कहा गया यह बात पूर्णतया गलत है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण की सभी घटनाएँ पूर्ण प्रामाणिक हैं। भारतीय संस्कृति, परम्परा, तथा धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के मूल रहस्य इसी ग्रन्थ में सुरक्षित हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री राम को आधुनिक इतिहास की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। किसी मान्य ग्रन्थ के कुछ अंश को प्रामाणिक तथा कुछ को अपनी आधारहीन बातों को सिद्ध न कर सकने की दशा में अप्रामाणिक मानने की दुराग्रही दृष्टि का परित्याग इस समय अत्यावश्यक है। सभी लोगों को धार्मिक तथा आध्यात्मिक ग्रन्थों की बातों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने के प्रयास से अपने को दूर रखने का प्रयास करना चाहिए।

धार्मिक ग्रन्थों के विषय में ऐसी बातों से तनाव एवं विवाद का वातावरण पैदा हो जाता है। हमें ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना है जिससे इस समय देश में कोई दूसरी समस्या उपस्थित हो। रामायण की घटनाओं के विषय में धर्माचार्यों का निर्णय ही एकमात्र दिशा-निर्देशक होना चाहिए।

कालनिर्धारण में पूर्वाग्रह अनुचित

यद्यपि मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद अनादि हैं, अनादि काल से ही हम लोगों के पूर्वज उन्हें अपौरुषेय मानते आये हैं, मीमांसादि शास्त्रों में इनकी अनादिता अपौरुषेयता बड़े समारोह से सिद्ध की गई है, तथापि मैक्समूलर, प्रो० वेएटली, प्रो० वायो, प्रो० वेबर, प्रिंसिपल थीबो, म० म० सुधाकर द्विवेदी, लोकमान्य तिलक, पं० शङ्कर वालकृष्ण दीक्षित, ज्योतिर्विद् केतकर आदि ने वेदों का निर्माण काल ६ हजार वर्ष माना है। गोडवोले, लेले, आदि इससे अधिक चौवीस हजार वर्ष आगे वढ़े हैं। पुरातत्त्वज्ञ दास वाबू ८० हजार वर्ष वेद काल मानते हैं।

हडप्पा मोहनजोदड़ों आदि की खुदाई में उपलब्ध एक के नीचे दूसरा, तीसरा नगरनिर्माण और उसमें मिली हुई वस्तुओं की छान-वीन करने से उसका काल १५ हजार वर्ष प्राचीन वताया जाता है। इससे भारतीय संस्कृति अति प्राचीन सिद्ध होती है। इसी से उसके साहित्य की भी प्राचीनता सिद्ध होती है। साहित्य कितना प्राचीन है इसका निर्णय भी उन्हीं साहित्य ग्रन्थों के अन्त:साक्ष्य एवं घटनाओं से होना चाहिए।

वेद काल निर्णय के लेखक पण्डित दीनानाथ चुलेट के अनुसार कात्यायन श्रौत्रसूत्र, पारस्कर गृह्यसूत्र एवं शुल्वसूत्र के भाष्यकार कर्काचार्य का काल वर्तमान से पन्द्रह हजार वर्ष पूर्व है। कहा जाता

है कि वसन्त सम्पात (वसन्तऋतु का आगमन) सर्वदा एक नक्षत्र पर नहीं होता, किन्तु सभी नक्षत्रों पर वसन्त गति से घूमता हुआ पच्चीस हजार आठ सौ वर्षों अथवा २६ हजार वर्षों में उसी नक्षत्र पर आ जाता है, जहां से प्रारम्भ हुआ है। जैसे यदि इस वर्ष उत्तराभाद्रपद के द्वितीय चरण पर बसन्त सम्पात हुआ है तो २६ हजार वर्ष बाद फिर उत्तराभाद्रपद नक्षत्र के द्वितीय चरण पर आयेगा। बावन हजार वर्ष पहले भी उसी पर वसन्त सम्पात निश्चित है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार पूर्व पश्चिम आदि दिशाओं के निर्णय के लिए समस्थल पर बारह अंगुल का शङ्कु खड़ा करके बारह अंगुल की रस्सी से शंङ्कु के चारों ओर वर्तुलाकार लकीर बनाने से वृत्त बनता है। उसका नाम है त्रिज्यावृत्त। दिन के दूसरे पहर में (अर्थात् नव बजे के आस पास) जब शंङ्कु की छाया का अग्रभाग त्रिज्या वृत्त के भीतर आने के लिए त्रिज्या वृत्त के जिस अंश का स्पर्श करता है वही है पश्चिम दिशा। इसी तरह तीसरे पहर के अन्त में शङ्कु की छाया का अग्रभाग त्रिज्यावृत्त को पार करने के लिए त्रिज्यावृत्त के जिस अंश का स्पर्श करता है वह है पूर्व दिशा। त्रिज्यावृत्त के दोनों छायास्पर्शी अंशों को मिलाने वाली रेखा का नाम पूर्व पश्चिम रेखा है।

साल भर में छः-छः महीने बाद दो दिन ऐसे आते हैं जिनमें सूर्य का उदय और अस्त इस पूर्व पश्चिम रेखा पर ही होता है। उदय होने का क्रम शनैः शनैः दक्षिण की ओर बढ़ते-बढ़ते जिस दिन पूर्व-पश्चिम रेखा पर उदयास्त होता है उस दिन शरद् सम्पात (अर्थात् शरद् ऋतु का प्रारम्भ) और क्रमशः उत्तर की ओर बढ़ते-बढ़ते जिस दिन उदयास्त पूर्व पश्चिम रेखा पर होता है उस दिन वसन्त सम्पात (वसन्त का प्रारम्भ) होता है।

'समे शंकुं निखाय शंकुसम्मितया रज्ज्वा मण्डलं परिलिख्य यत्र लेखयोः शंक्वग्रछाया निपतति तत्र शंकुं निहन्ति सा प्राची' (शुल्व सूत्र२)

इस सूत्र का भाष्य करते हुए कर्काचार्य लिखते हैं—"दक्षिणायने तु चित्रां यावदादित्य उपसर्पति उदगयने स्वातीमेति, विषुवतीये त्वहनि चित्रा स्वात्योर्मध्य एवोदयः। अतस्तन्मध्ये शंकुगतैव च्छाया भवति। एवञ्च सति अहरन्तरेषु सैव प्राची न भवतीत्यत्रोच्यते। 'तं प्राञ्च-मुद्धरति' इत्यनेन प्राच्युद्धरणे कृते अनेकाहः साध्येऽपि कर्मणि तदेवोद्धरणमित्यहरन्तरे दोषो न भवति।'

अर्थात् सूर्य चित्रा पर जब तक रहते हैं तब तक दक्षिणायन रहता है। स्वाती पर पहुँचने पर उत्तरायण हो जाता है। अर्थात् स्वाती नक्षत्र पर पहुँचने तक दक्षिणायन रहता है। जब सूर्य चित्रा को पार कर जाता है और 'स्वाती पर नहीं पहुँचता; इस चित्रा स्वाती के मध्य के काल में ठीक पूर्व पश्चिम रेखा पर उदयास्त होता है। इस कारण उस दिन द्वादशांगुल शंकु की छाया से सधी हुई पूर्व पश्चिम की रेखा शंकु को पार कर जाती है। अन्य दिनों में भी शंकु की छाया के अग्र भाग के मण्डल में प्रवेश निर्गम चिन्हों से पूर्व पश्चिम रेखा होती है किन्तु वह शंकु को पार नहीं करती। साल भर में जिस दिन सूर्य चित्रा स्वाती के मध्य में आता है उस दिन के सूर्योदय से साधित की हुई प्राची अन्य दिनों में भी उपयुक्त होती है। कर्काचार्य के इस कथन से यह सिद्ध होता है कि उनके समय में वसन्त सम्पात ठीक-ठीक चित्रा स्वाती के मध्य में हुआ करता था। क्योंकि वसन्त सम्पात के दिन ही सूर्य का उदयास्त पूर्व पश्चिम रेखा पर होता था।

यद्यपि उस दिन शरद् सम्पात भी कहा जा सकता है तथापि इस प्रसङ्ग में 'उदगयने स्वातीमुपैति' (उत्तरायण में स्वाती पर पहुँचते हैं) इस वचन के अनुसार उत्तरायण के प्रसङ्ग में वसन्त सम्पात ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त इसी प्रसङ्ग में 'विषुवतीये त्वहनि चित्रास्वात्योर्मध्य एवोदयः' (विषुवत् वाले दिन चित्रा स्वाती के

मध्य में ही उदय होता है) इस भाष्य के अनुसार 'विषुवतीय' शब्द से भी यही प्रतीत होता है कि चित्रा स्वाती के मध्य में सूर्य के उदय-अस्त का दिन वसन्त सम्पात ही है। क्योंकि जब दिन रात समान होते हैं उसी को विषुवतीय दिन कहा जाता है। यह शरद् सम्पात और वसन्त सम्पात में ही होता है। कारण उस दिन क्रान्ति वृत्त (जिस पर सूर्य चन्द्र आदि ग्रह घूमते हैं) पर घूमते-घूमते सूर्य विषुवत् वृत्त (दैनिक भ्रमण के लिए निश्चित मार्ग) पर आता है। उत्तर गोलार्ध से दक्षिण गोलार्ध पर जाते समय सूर्य के विषुवत् वृत्त पर पहुँचने पर शरद् सम्पात और दक्षिण गोलार्ध से उत्तर गोलार्ध की ओर जाते समय सूर्य के विषुवत् वृत्त में पहुँचने पर वसन्त सम्पात होता है। पर यह स्थिर नहीं होता, सूर्य विषुवत् वृत्त में एक स्थान पर न काटकर कुछ पीछे हटते हुए सम्पात पर आता है। इसी को अयन चलन कहा जाता है। इसीलिए वर्तमान की अयन गति के गणित से वसन्त सम्पात को अपने स्थान पर आने में लगभग २६ हजार वर्ष बीतते हैं। तथा च उत्तर की ओर बढ़ते हुए सूर्य के उदय होने के क्रम में जो विषुव दिन होता है वह वसन्त सम्पात का ही माना जाता है, शरद् सम्पात का नहीं।

इस विचार के अनुसार कर्काचार्य का समय पन्द्रह हजार वर्ष प्राचीन है। फिर कात्यायन श्रौतसूत्रादिकों का समय उससे अति प्राचीन होगा। वेदों का समय क्या कहा जाय; वे तो अनादि काल से प्रवृत्त हैं। वेदार्थ के उपबृंहण के लिए रामायण और महाभारत की रचना हुई है। अतः उनके निर्माण काल के विषय में विचार करना आवश्यक है। मनु, व्यास और जैमिनि की दृष्टि में तो मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद अनादि और अपौरुषेय हैं। स्वयं वेद की दृष्टि में भी वेद नित्य और अनादि हैं। जैसा कि इन वचनों से स्पष्ट होता है। 'वाचा विरूप नित्यया' (ऋ०सं० ८।७५।६) 'पूर्वे पूर्वेभ्यो वच एतदूचुः'

(तै० ब्रा०) 'अत एव च नित्यत्वम्' 'शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्' 'आख्याप्रवचनात्' (जै० सू०)।

अतः किसी के कालनिर्धारण में एक सीमा निर्धारण करके उसी दायरे में सोचना बुद्धिमानी नहीं है ।

उपसंहार

इस प्रकार इस छोटे से लेख में श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण और श्रीमहाभारत संहिता का काल निर्णय आस्तिकों की दृष्टि से किया गया है। जो वस्तु जिसकी होती है उसका रहस्य भी उसी पद्धति से जानने पर मिलता है, अन्यथा जो कुछ किया जाता है उसमें विपरीत फल ही निकलता है। वेदशास्त्र आदि हम लोगों की अनादि वंश-परम्परा से अनादि अपौरुषेय ही घोषित आ रहे हैं। यदि उद्धरण वाली पद्धति ही लें तो श्री मन्महाभारत में वाल्मीकीय रामायण का उद्धरण है, यथा—

अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद्ब्रवीषि प्लवङ्गम ॥ ६७ ॥
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
पीडाकरममित्राणां यत्स्यात्कर्त्तव्यमेव तत् ॥ ६८ ॥

(म० भा० द्रोणपर्व १४३)

यह श्लोक श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के युद्ध काण्ड में ८१ सर्ग का २८ वाँ है।

'रामायणोऽतिविख्यातः श्रीमान् वानरपुङ्गवः।'

(म० भा० वनपर्व १४७।११)

इसी प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में मनुस्मृति का उद्धरण है।

'श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ।
गृहीतौ धर्मकुशलैस्तथा तच्चरितं मया ॥ ३० ॥
राजनिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥ ३१ ॥
शासनाद्वापि मोक्षाद्वा स्तेनः पापात्प्रमुच्यते।
राजात्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्विषम् ॥ ३२ ॥'

(श्री वा० रा० कि० का० १८)

कुछ हेर-फेर से ये श्लोक मनुस्मृति में मिलते हैं।

'शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते।
अशासित्वातु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्विषम् ॥ ३१६ ॥
राजभिः कृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥ ३१८॥

(मनुस्मृति अध्याय ८)

श्री मद्वाल्मीकीय रामायण चौबीसवें त्रेता में भगवान श्रीराम के अवतार के समय बना है और मनुस्मृति इस वैवस्वत मनु के पहले ६ मनु और बीत चुके हैं। सर्व प्रथम स्वायम्भुव मनु के उपदेश से भृगु ने निर्माण किया है। उद्धरण की प्रक्रिया के अनुसार मनुस्मृति का काल सृष्टि के प्रारम्भ से ही होने के कारण १ अरब ९५ करोड़ ८८ हजार ७७ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

वस्तुतः दैव असुर दो प्रकार के भूतसर्ग बराबर ही चला करते हैं तथा सृष्टि प्रक्रिया भी पूर्ववत् ही चला करती है। यह श्रीमद्भवद्गीता में कहा गया है—

'भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।'
(श्री० म० भा० गी० ८१)

अतः आस्तिकता नास्तिकता दोनों ही सिद्धान्त अनादि काल से ही प्रचलित हैं। नया कोई सिद्धान्त नहीं है। इसी दृष्टि से श्रीमद्वाल्मीकीय रामयण में बुद्ध का नाम आना असमञ्जस नहीं है। वेदों में भी 'कथमसतस्सज्जायेत' आदि कहकर इस असद्वाद (शून्यवाद) का खण्डन किया गया है।

इस समय श्रीकृष्ण द्वैपायन द्वारा निर्मित पुराण उपलब्ध हैं किन्तु इसके पहले भी ब्रह्मा जी द्वारा प्रोक्त पुराण थे। उनकी चर्चा वेदों और वाल्मीकीय रामायण में है।

अतः सभी वेद और वेदानुसारी आर्ष धर्मग्रन्थ भगवद्रूप ही हैं—

'काव्यलापाश्च ये केचित् गीतकान्यखिलानि च।
शब्दमूर्तिधरस्यैते विष्णोरंशा महात्मनः॥

वे सभी सृष्टि के आरम्भ से ही प्रवृत्त हैं। पाश्चात्यों द्वारा उठायी गई प्रक्रिया अधकचरी है। उस प्रक्रिया से तत्त्व निर्णय नहीं हो सकता।

॥ इति शम्॥

पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज के ग्रन्थ

रामायण मीमांसा	२५—००
वेद का स्वरूप और प्रामाण्य (दो भागः)	७—५०
अहमर्थ और परामर्थसार	६—००
श्रीभगवत्तत्त्व	१०—००
वर्णाश्रम-मर्यादा और संकीर्तन-मीमांसा	३—५०
शांकरभाष्य पर आक्षेप और समाधान	१—५०
वेद प्रामाण्य मीमांसा	१—००
तिथ्यादिनिर्णयः, कुम्भनिर्णयश्च	१—००
संघर्ष और शान्ति	३—५०
मार्क्सवाद और रामराज्य	१५—००
राहुल जी की भ्रान्ति	१—२५
जाति, राष्ट्र और संस्कृति	१—२५
ये राजनीतिक दल	०—५०
रामराज्य-परिषद् और अन्य दल	०—५०
रामराज्य-परिषद् और स्वतन्त्र-पार्टी	०—५०
आधुनिक राजनीति और रामराज्य-परिषद्	०—५०
व्यक्तिगत या सामूहिक ?	०—५०
राजनीति में भी ईमानदारी	०—२५
भक्तिसुधा प्रथम खण्ड	५—००
" द्वितीय खण्ड	१०—००
" तृतीय खण्ड	१०—००
राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और हिन्दू धर्म	५—००
भक्तिरसार्णवः	५—००
वेदस्वरूपविमर्शः	७—००
चातुर्वर्ण्य संस्कृतिविमर्शः (प्रथम भाग)	५—००
श्रीविद्यारत्नाकरः	२५—००
धर्म और राजनीति	०—५०
पूंजीवाद समाजवाद रामराज्य	५—००

प्रकाशक :—

श्री सन्तशरण वेदान्ती

धर्मसंघ, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी (उ० प्र०)

मुद्रक : गायत्री प्रेस, अस्सी, वाराणसी ।